लघु-सिद्धान्त-कौमुदी

भैमीव्याख्या

अव्यय - प्रकरण

भीमसेन शास्त्री

एम्० ए०, पीएच्० डी०, साहित्यरत्न

भैमी प्रकाशन

५३७, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली—११०००६

प्रकाशक—

मैत्री प्रकाशन
५३७, लाजपतराय मार्केट,
दिल्ली—११०००६

●

●

मूल्य - पचास रुपये केवल।

●

प्रथम संस्करण : १९८३

●

बी. के. कम्पोजिंग एजेन्सी दिल्ली द्वारा कम्पोज करवा
कर राधा प्रेस, मेन रोड, गांधी नगर, दिल्ली में मुद्रित।

आत्म - निवेदन

आज से तेंतीस वर्ष पूर्व सन् १९५० में जब लघु - सिद्धान्त - कौमुदी की भैमी - व्याख्या का पूर्वार्धरूप प्रथम भाग प्रकाशित हुआ था तब से लेकर आज तक इस व्याख्या का स्वागत होता चला आ रहा है। एक बार जो इस व्याख्या को देख लेता है सदा के लिये इस का भक्त बन जाता है। अध्यापक हो या छात्र उसे फिर दूसरी व्याख्या की अपेक्षा नहीं रहती। देश-विदेश के जाने-माने विद्वानों, विद्यार्थियों, शोधच्छात्रों तथा संस्कृतप्रेमी जिज्ञासु पाठकों के इतने अधिक स्नेहपत्र, शुभाशंसन, अभिनन्दनपत्र और प्रशस्तिपत्र प्राप्त हुए हैं, जो सम्भवतः कई सौ पृष्ठों में समा सकते हैं। अनेक शुभाकाङ्क्षी गुरुजनों ने विशेषतः इस व्याख्या के अव्ययप्रकरण की भूरि भूरि प्रशंसा की है और यहाँ तक लिखा है कि यदि लेखक (भैमीव्याख्याकार) **ने अपने जीवन में अन्य कोई प्रणयन न कर केवल अव्ययप्रकरण ही लिखा होता तो केवल यह प्रकरण ही उसे अमर करने में सर्वथा समर्थ था। यदि यह प्रकरण पृथक् भी छापा जाये तो छात्रों को बहुत लाभ पहुंच सकेगा।** परन्तु लेखक को अमर होने की तो कभी अभिलाषा ही उत्पन्न नहीं हुई, हां समय आने पर इस प्रकरण को पृथक् छपवाने का सुझाव जरूर उस के दिल में बैठ गया। अब जब इस व्याख्या के द्वितीय संस्करण के छापने का प्रसङ्ग उत्पन्न हुआ तो लेखक ने सारे पूर्वार्ध का निरीक्षण करते हुए इस अव्यय प्रकरण पर भी दृष्टिपात किया। प्रथम संस्करण वाला पूर्वोक्त बहुचर्चित अव्ययप्रकरण लेखक ने २०-२२ वर्ष की अल्पायु में में ही लिखा था। उसके बाद भी लेखक निरन्तर व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन में जुटा रहा। अब तेंतीस वर्षों के बाद जब लेखक ने इसका पुनरवलोकन प्रारम्भ किया तो उसे यह प्रकरण पर्याप्त छोटा तथा अपूर्ण सा लगने लगा (हालांकि प्रथम संस्करण में यह ४८ पृष्ठों में व्याख्यात किया गया था)। उस के विचार मे यह प्रकरण और अधिक नये नये सुभाषितों और सूक्तियों से विभूषित किया जाना चाहिये था। किञ्च उस के मनमें बार बार यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि चादियों और स्वरादियों के आकृतिगण होने से अन्य जो अनेक अव्यय लोक में प्रसिद्ध हैं उन का भी पूर्णरीत्या संकलन करना चाहिये। इस के साथ तद्धितप्रत्ययान्त प्रत्येक अव्यय का जहां प्रथम संस्करण में नाममात्र का उल्लेख था उनकी भी सोदाहरण सटिप्पण व्याख्या प्रस्तुत करने की उस की तीव्र अभिलाषा जागृत हुई। इन सब के फलस्वरूप लेखक ने छः मासों के गहन अध्ययन के बाद इस समूचे प्रकरण को दुबारा लिखना प्रारम्भ किया और प्रत्येक अव्यय के प्रत्येक अर्थ पर खूब ऊहापोह कर अच्छे से अच्छा उदाहरण साहित्यजगत् से छांटना प्रारम्भ किया। अनेक नये अव्ययों का

संग्रह किया गया और उन सब के यथासम्भव साहित्यगत उदाहरण भी ढूँढे गये । इस प्रकार यह प्रकरण कलेवर में धीरे धीरे बढ़ता चला गया। अव्ययों की संख्या जहां पहले संस्करण में तीन सौ के लगभग थी अब सवा पांच सौ तक जा पहुँची । प्रत्येक उदाहृत सुभाषित वा सूक्ति के मूलस्रोत को ढूँढने का भी पूरा पूरा प्रयास किया गया। इसके लिये कई ग्रन्थों का अनेक बार पारायण भी किया गया। विविध कोषों की भी सहायता ली गई। वेद, उपनिषत्, ब्राह्मण आदि वैदिक साहित्य से भी कई अव्ययों के उदाहरण छांटे गये। कई स्थानों पर अव्ययार्थ को स्पष्ट करने के लिए उद्धृत वचनों के हिन्दी भाषा में अर्थ भी दिये गये। संस्कृतसाहित्य में इस समय अनुपलब्ध अव्ययों पर भी यथास्थान टिप्पण किये गये। प्रकरणान्त में इस ग्रन्थ में आये सब अव्ययों की अकारादिक्रम से वर्णानुक्रमणिका भी दे दी गई ताकि किसी भी अव्यय को ढूँढने में कठिनाई न रहे । परिणामतः यह अव्यय-प्रकरण पहले से लगभग दुगना हो गया। यह है इस ग्रन्थ को दुबारा गुम्फन करने की संक्षिप्त कहानी । लेखक अपने प्रयत्न में पूर्वापेक्षा कितना सफल हुआ है इसका विवेचन तो विद्वज्जन ही करेंगे । जहाँ तक लेखक का सम्बन्ध है उस ने अपनी आयु के प्रकर्ष तथा अर्धशताब्दी तक व्याकरण के अपने अध्ययन-अध्यापन का पूरा पूरा लाभ उठाते हुए इस प्रकरण को संवारने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। हिन्दी में इस प्रकार अव्ययों का विवेचन प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है । लेखक को पूर्ण आशा है कि इस से विद्यार्थियों, अध्यापकों बल्कि सर्वसाधारण पाठकों को भी बहुत लाभ होगा.।

जिन लोगों के पास भैमीव्याख्या के प्रथम भाग का प्रथम संस्करण है उनके संग्रहण के लिये यह ग्रन्थ पृथक् रूप से छपवाया गया है ताकि वे पूर्वसंस्करण की न्यूनता को इस ग्रन्थ से पूर्ण कर सकें। जो लोग लघुकौमुदी की भैमीव्याख्या का दिग्दर्शन करना चाहते हैं वे इस स्वल्प मूल्य वाले ग्रन्थ का अवलोकन कर उस विशाल व्याख्या की कुछ झलक पा सकें—इसलिये भी यह ग्रन्थ पृथक् रूप से मुद्रित किया गया है ।

भैमीनाम्नीं महाव्याख्यां बोद्धुं चेत्किञ्चिदस्ति धीः ।
तदा विचिन्त्यतां भ्रातर्व्याख्यैषा मेऽव्ययानुगा ॥१॥
लघुनैतेन ग्रन्थेन स्पष्टमेष्यति मे श्रमः ।
भैमीव्याख्याविनिर्माणेऽहर्निशं यो मया कृतः ॥२॥

मुखर्जी स्ट्रीट, गांधी नगर
दिल्ली - ११०००३१
विजयदशमी (१६-१०-१९८३)

सुरभारतीसमुपासको विदुषामनुचरो
भीमसेनः शास्त्री

अथाऽव्यय-प्रकरणम्

सँस्कृतसाहित्य में दो प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। १. विकारी, २. अविकारी। जो शब्द विभक्तिवचनवशात् विकार को प्राप्त होते हैं वे 'विकारी' कहाते हैं। इस कोटि में सुँबन्त[1] और तिङन्त शब्द आते हैं। जो शब्द सदा सब विभक्तियों में विकाररहित अर्थात् एकसमान रहते हैं वे 'अविकारी' कहाते हैं। यथा—च, न, यदि, अपि, नाना, विना आदि। व्याकरण में अविकारी शब्दों को 'अव्यय' कहते हैं। अब यहां उन अव्ययों का प्रकरण आरम्भ किया जाता है।

[लघु०] सञ्ज्ञा-सूत्रम्—(३६७) **स्वरादिनिपातमव्ययम्** ।१।१।३६।।

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसञ्ज्ञाः स्युः ।।

अर्थः—स्वर् आदि शब्द तथा निपात अव्ययसञ्ज्ञक हों।

व्याख्या—स्वरादिनिपातम् ।१।१। अव्ययम् ।१।१। समासः—'स्वर्'शब्द आदिर्येषान्ते स्वरादयः। स्वरादयश्च निपाताश्च = स्वरादिनिपातम्। समाहारद्वन्द्वः। अर्थः—(स्वरादिनिपातम्) स्वर् आदि शब्द तथा निपात (अव्ययम्) अव्ययसञ्ज्ञक होते हैं। स्वरादि शब्द पाणिनिमुनिविरचित 'गणपाठ' में पढ़े गये हैं। निपात—अष्टाध्यायी के प्रथमाध्याय के चतुर्थपादान्तर्गत **प्राग्रीश्वरान्निपाताः** (१.४.५६) के अधिकार में पढ़े गये हैं। अव्ययसञ्ज्ञा का प्रयोजन सुँब्लुक् आदि आगे मूल में ही स्पष्ट हो जायेगा।

अब मूलगत स्वरादिगण—अर्थ, उदाहरण तथा विस्तृत टिप्पण सहित नीचे दिया जा रहा है। इस गण में बालोपयोगी अत्यन्त प्रसिद्ध शब्दों पर चिह्न (*) कर दिया गया है।

स्वरादि-गण

[१] स्वर्* ।।

स्वर्गे परे च लोके स्वः—इत्यमरः। १. स्वर्ग-लोक—**पुण्यकर्माणः स्वर्गच्छन्ति। देवाः स्वस्तिष्ठन्ति।** २. परलोक—**स्वर्गतस्य क्रिया कार्या पुत्त्रैः परमभक्तितः** (उद्धृत)। ३. सुखविशेष—**यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्। अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदम्** (तन्त्रवार्त्तिक)।

[२] अन्तर्* ।।

१. में, अन्दर, भीतर, मध्य आदि—**अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम्** (ऋ० १. २३.१९), जल में अमृत है जल में औषध है। **अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते। निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः** (पञ्च० १. ३२)। **अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते** (विक्रमो०), निरुद्धप्राण मुमुक्षुओं से वह

---

१. यहां सुँबन्त से तात्पर्य अव्ययभिन्न सुँबन्तों से है।

भगवान् अन्दर अर्थात् अपने हृदय में खोजा जाता है। इन अर्थों में इस अव्यय के साथ प्रायः सप्तम्यन्त पद का प्रयोग होता है पर कहीं-कहीं षष्ठ्यन्त वा द्वितीयान्त का भी प्रयोग देखा जाता है। यथा—**त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत्** (याज्ञ० ७.१०४)। **अन्तर्देवान् मर्त्यांश्च** (ऋ० ८.२.४), देवों और मर्त्यों के बीच में। २. पकड़ना—**अन्तर्हत्वा मूषिकां श्येनो गतः** (काशिका १.४.६५), बाज़ चुहिया को मार कर पकड़ ले गया।

[३] प्रातर्* ॥

१. प्रातःकाल, सुबह, सवेरे—**प्रातर्द्यूतप्रसङ्गेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसङ्गतः। रात्रौ चौरप्रसङ्गेन कालो गच्छति धीमताम्** (सुभाषित)। द्यूतप्रसङ्गः=महाभारतम्, स्त्रीप्रसङ्गः=रामायणम्, चौरप्रसङ्गः=भागवतम्।

[४] पुनर्* ॥

१. फिर, दुबारा—**न पुनरेवं प्रवर्त्तितव्यम्** (शाकुन्तल० ६)। **भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?। गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय** (स्वप्न० १)। २. 'तु' के अर्थ में—**पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः** (कुमार० ५.४)। पुनः-पुनः=बार-बार—**विघ्नैः पुनःपुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति** (मुद्रा० २.१७)। किं पुनः=कहना ही क्या—**मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे** (मेघ० १.३)। पुनरपि=पुनः पुनः=बार बार—**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्। इह संसारे खलु दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे** (चर्पट० ८)।

[५] सनुतर् ॥

१. छिपना—**सनुतश्चौरो गच्छति** (गणरत्न०)। इस अव्यय का प्रयोग लोक में नहीं पाया जाता। अमरकोष आदि लौकिक कोषों में इस का कहीं उल्लेख नहीं। वेद में इस के प्रयोग मिलते हैं।[1]

नोट—उपर्युक्त पाञ्चों अव्यय रेफान्त हैं अतः रु का रेफ न होने से **हशि च** (१०७) आदि द्वारा उत्व आदि कार्य नहीं होते। **यथा**—स्वर्गतः, प्रातर्गच्छ, पुनरत्र,

---

१. निघण्टु में यह 'निर्णीतान्तर्हित' अर्थ में पढ़ा गया है। निर्णीतं च तद् अन्तर्हितं चेति कर्मधारयः (स्कन्दमाहेश्वरकृत निरुक्तभाष्यटीका)। जो छिपा हुआ पर निर्णीत हो उसे 'सनुतर्' कहते हैं। श्रीसायण अपने वेदभाष्य में सर्वत्र इस का अर्थ 'छिपा हुआ' करते है—**सनुतश्चरन्तम्**—निगूढं चरन्तम् (ऋ० ५.२.४ सायणभाष्य)। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने अष्टाध्यायीभाष्य तथा वेदाङ्गप्रकाश के 'अव्ययार्थ' में 'सनुतः' का 'सदा' अर्थ लिखा है। **सनुतः पुरुषार्थे प्रयतेरन्**—यह उन्होंने उदाहरण भी दिया है। इस प्रकार **आरे द्वेषांसि सनुतर्दधाम** (ऋ० ५.४५.५) इस ऋचा का अर्थ होगा—हम सदा शत्रुओं को दूर रखें। यह अर्थ भी सुसंगत प्रतीत होता है।

अन्तर्गृहे, **सनुतर्धेहि तं ततः** (ऋ० ८.६७.३)। प्रातोऽत्र, पुनोऽपि लिखने वाले विद्यार्थी सावधान रहें।

[६] उच्चैस्* ॥

१. महान्—**किं पुनर्यस्तथोच्चैः** (मेघ० १.१७)। २. ऊँचे पर, ऊँचे में—**पश्चादुच्चैर्भुजतरुवन०** (मेघ० १.३६)। **विपद्युच्चैः धैर्यम्** (नीति० ५६)। **उच्चैरुदात्तः** (१.२.२९)। ३. जोरदार आवाज में—**उच्चैर्विहस्य** (रघु० २.१२)। ४. अत्यधिक—**विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ताः** (ऋतु० १.२२)।

[७] नीचैस्* ॥

१. मन्द आवाज से (प्रायः क्रियाविशेषण)—**नीचैः शंस हृदि स्थितो ननु स मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति** (अमरु० ६८)। २. नीचे, नीचे की ओर—**नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण** (मेघ० २.४६)। ३. धीरे से, मन्दगति से—**नीचैर्वाति समीरणः** (व्या० च०)। ४. विनीत, **नम्र—तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत** (रघु० ३.३४)।

[८] शनैस्* ॥

१. धीरे से (क्रियाविशेषण)—**शनैर्याति पिपीलिका** (व्या० च०)। **धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः** (मनु० ४.२३८)। **कुरु पदानि घनोरु! शनैः शनैः** (वेणी० २.२१)। **शनैश्चरः**। **शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम्** (सुभाषित०)।

[९] ऋधक् ॥

१. सत्य—**ऋधग्वदन्ति विद्वांसः** (गणरत्न०)। गणरत्नमहोदधि में इस के कुछ अन्य अर्थ भी लिखे हैं—वियोग-शीघ्र-सामीप्य-लाघवेष्वित्यन्ये। लौकिककोषों में इस का प्रायः उल्लेख नहीं मिलता पर वेद में इस के प्रचुर प्रयोग हैं—**किं स ऋधक् कृणवद्** (ऋ० ४.१८.४)।

[१०] ऋते* ॥

१. विना, बग़ैर—**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः** (सुप्रसिद्ध), ज्ञान के विना मुक्ति नहीं। **ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपा-तमस्काण्ड-मलीमसं नभः** (माघ० १.३८), सूर्य के विना रात्रि के अन्धकार से मलिन आकाश को कौन धो कर निर्मल बना सकता है?

नोट—'ऋते' के योग में **अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते** (२.३.२९) सूत्र से पञ्चमी विभक्ति का विधान किया गया है। जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों में स्पष्ट है। लोक में इस के योग में कहीं कहीं द्वितीया का प्रयोग भी देखा जाता है। **ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे** (गीता० ११.३२)। चान्द्रव्याकरण में इस के योग में द्वितीया का विधायकसूत्र भी पढ़ा गया है—**ऋते द्वितीया च** (चान्द्र० २.१.८४)। पाणिनीय वैयाकरण इस का समाधान—**ततोऽन्यत्रापि दृश्यते** इस वार्त्तिकांश से करते हैं।

[११] युगपत्* ॥

१. एक साथ, एक ही समय में— **सहस्रमक्ष्णां युगपत् पपात** (कुमार० ३.१)। **युगपज्ज्ञानानुपपत्तिर्मनसो लिङ्गम्** (न्यायदर्शन १.१.१६)।

[१२] आरात्* ॥

आराद् **दूरसमीपयोरि**त्यमरः। १. दूर—आराद् दुष्टात् सदा वसेत्। दुष्ट से सदा दूर रहे। २. समीप, निकट—**तमर्च्यम् आराद् अभिवर्त्तमानम्** (रघु० २.१०)। ग्रामादारादारामः—गांव के पास बगीचा है।

नोट—'आरात्' के योग में **अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते** (२.३.२९) सूत्र से पञ्चमी विभक्ति का विधान है।

[१३] पृथक्* ॥

१. अलग, भिन्न—**शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक्** (गीता० १. १८)। **सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः** (गीता० ५.४)। २. विना, बग़ैर—रामं पृथग् नहि सुखम्।

नोट—'विना' अर्थ वाले पृथक् के योग में **पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्** (२.३.३२) सूत्र से द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी विभक्ति का विधान है।

[१४] ह्यस्* ॥

१. बीत चुका पिछला दिन (Yesterday)—ह्योऽस्माकं परीक्षाऽभूत्। ह्यो भवम्—ह्यस्त्यं ह्यस्तनं वा। **ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्** (४.२.१०४) सूत्र से पाक्षिक त्यप् हो जाता है। तदभाव में **सायं-चिरं-प्राह्णे-प्रगेऽव्ययेभ्यष्टच्युटचुलौ तुँट् च** (४.३.२३) से टच्युप्रत्यय हो कर उसे तुँट् का आगम हो जाता है। ह्यस्त्यम्=अतीत कल से सम्बन्ध रखने वाला कार्य आदि।

[१५] श्वस्* ॥

१. Tomorrow आने वाला कल—**श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽपराह्णिकम्। नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्** (महाभारत० १२.३२१.७३)। **वरमद्य कपोतः श्वोमयूरात्**—नौ नकद न तेरह उधार।

[१६] दिवा* ॥

१. दिन—दिवा च रात्रिश्च दिवारात्रम्, दिन और रात। **निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः** (भागवत० १.१६.९)। २. दिन में—**पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते** (लोकोक्ति)।

[१७] रात्रौ ॥

१. रात में—**रात्रौ वृत्तं तु द्रक्ष्यसि। रात्रौचरः**। ये दोनों उदाहरण गणरत्नमहोदधि के हैं। 'रात्रौ' को अव्यय मानना हमारे विचार में युक्त प्रतीत नहीं होता। 'रात्रि' शब्द से ही काम चल सकता है। यदि इसे अव्यय मानना ही अभीष्ट है तो 'रात्रौ' को विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय माना जा सकता है।

[१८] सायम्*॥

१. सायङ्काल, शाम का समय—**प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि** (रघु० १.९०)। **सायंप्रातर्मनुष्याणामशनं वेदनिर्मितम्। नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत्** (महाभारत० १२.१६३.१०)।

नोट—इसी अर्थ में घञन्त 'साय' शब्द का भी प्रयोग देखा जाता है। वह घञन्त होने से पुंलिङ्ग माना जाता है। **संख्या-वि-सायपूर्वस्या-ह्नस्याहनन्यतरस्यां ङौ** (६.३. १०९) सूत्र में इसी का ग्रहण होता है—सायाह्नि, सायाहनि, सायाह्ने। इस विषय में **सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टयुटयुलौ तुंट् च** (४.३.२३) सूत्र की काशिका-वृत्ति भी द्रष्टव्य है।

[१९] चिरम्*॥

१. देर तक—**मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्** (महाभारत ५.१३३. १५); देर तक धूँआ देने की अपेक्षा थोड़ी देर तक प्रज्वलित होना श्रेष्ठ है। चिरं जीवतु मे भर्ता।

नोट—दीर्घकालवर्त्ती पदार्थ में त्रिलिङ्गी चिर शब्द बहुधा प्रयुक्त होता है। इसी से ही चिरजीविन्, चिरायुष्, चिरक्रिय, चिरकारिन् आदि शब्द निष्पन्न होते हैं। 'चिरं जीवतु मे भर्ता' आदि 'चिरम्' अव्यय के उदाहरण भी चिरशब्द से क्रियाविशे-षणत्वेन निष्पन्न हो सकते हैं। इस अव्यय का फल 'चिरञ्जीवी, चिरञ्जीवकः' प्रभृति कतिपय शब्दों में ही देखा जाता है। 'चिरन्तनः' भी चिरशब्द से निष्पन्न हो सकता है। देखें—**सायंचिरंप्राह्णे**० (४.३.२३) सूत्र पर काशिकावृत्ति।

[२०] मनाक्*॥

१. ज़रा, थोड़ा-सा—**कुतूहलाक्रान्तमना मनागभूत्** (नैषध० १.११९)। **रे पान्थ विह्वलमना न मनागपि स्याः** (भामिनी० १.३६)।

[२१] ईषत्*॥

१. थोड़ा, स्वल्प, कुछ—**ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः** (शाकुन्तल० १ ४)। **ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः** (पञ्च० १.१५२)। २. आसानी से, बिना कठिनाई से—ईषत्करः कटो भवता; (८७६) सूत्र पर इस व्याख्या में इस उदाहरण का विवेचन देखें।

[२२] जोषम्*॥

तूष्णीमर्थे सुखे जोषम् इत्यमरः। १. चुप्प, शान्त—**जोषमाप न विशिष्य बभाषे** (नैषध० ५.७८)। **किमिति जोषमास्यते?** (शाकुन्तल० ५)। २. सुखपूर्वक—जोषमास्ते जितेन्द्रियः; जितेन्द्रिय पुरुष सुख से रहता है।

[२३] तूष्णीम्*॥

मौने तु तूष्णीम् इत्यमरः। चुप्प—**न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह** (गीता० २.९)।

[२४] बहिस्*।।

१. बाहर, बाहर से—**स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः** (मनु० २. १०३)। **अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोहराः। गुञ्जाफलसमाकाराः स्वभावादेव योषितः** (पञ्च० ४.८७)। २. बाह्य—**न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते** (उत्तर-राम० ६.१२)।

[२५] अवस् ।।

१. बाहर, नीचे आदि—**अवो गच्छति** (गणरत्न०)। इस के प्रयोग अन्वे-ष्टव्य हैं।

नोट—पञ्चम्यन्तात् सप्तम्यन्तात् प्रथमान्ताद्वा अवरशब्दात् **पूर्वाऽधराऽवरा-णामसि पुरधवश्चैषाम्** (५.३.३९) इति असिँप्रत्यये अवरशब्दस्य च 'अव्' इत्यादेशे **तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः** (३६८) इत्यनेनैवाव्ययत्वे सिद्धे स्वरादौ पाठश्चिन्त्य इति केचित्।

[२६] अधस्*।।

१. नीचे—**अधः पश्यसि किं वृद्धे तव किं पतितं भुवि। रे रे मूढ न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम्** (चाणक्य०)। अधोऽधः=नीचे और नीचे—**अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते। उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति** (हितोप० २.२)।

[२७] समया*।।

१. समीप—ग्रामं समया रम्या पुष्पवाटिका। **वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम्** (ऋ० १.७३.६); पर्वत के समीप नदियां बहती हैं। अमरकोष में इस का अर्थ 'मध्य' भी दिया गया है—**समयाऽन्तिकमध्ययोरि**त्यमरः। इस अर्थ में प्रयोग कम हैं।

नोट—इस के योग में द्वितीया का विधान है [देखें विभक्त्यर्थप्रकरणपरि-शिष्ट (११)]।

[२८] निकषा*।।

१ समीप—**विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति** (माघ० १.६८), क्या आप को याद है कि आप ने समुद्र पार कर के लङ्का के समीप रावण को मारा था? **अभिज्ञावचने लृँट्** (७६१) से भूतकाल में लृँट् का प्रयोग है। पूरा श्लोक सार्थ इस व्याख्या की लकारार्थप्रक्रिया में इसी सूत्र पर देखें।

नोट—इस के योग में भी पूर्ववत् द्वितीया विभक्ति का विधान है।

[२९] स्वयम्*।।

१. आत्मना, अपने आप—**इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः** (चाणक्य०)।[1]

---

१. दो सहेलियां अपने-अपने पति का गुणबखान इस प्रकार करती हैं—
चतुरः सखि मे भर्ता यल्लिखति च तत् परो न वाचयति।
तस्मादप्यधिको मे स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति॥ (समयोचित०)

[३०] वृथा*॥

१. व्यर्थ, बेकार, निरर्थक—**वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम्। वृथा दानं समर्थस्य वृथा दीपो दिवाऽपि च** (सुभाषित०)।

[३१] नक्तम्*॥

रात्रि (में)—**न नक्तं दधि भुञ्जीत** (चरक सूत्र० ७.५८), रात में दही सेवन न करे। २. रात—नक्तं च दिवा च नक्तंदिवम्। **अचतुर०** (५.४.७७) सूत्र से निपातन होता है।

नोट—संस्कृतसाहित्य में 'नक्त' इस प्रकार का अजन्त नपुंसक शब्द भी रात्रि-वाचक विद्यमान है। इस से नक्तचर, नक्तभोजिन्, नक्तान्ध, नक्तमाल प्रभृति शब्द बनते हैं। पर यहां मकारान्त अव्यय मानना भी परम आवश्यक है। अन्यथा—नक्त-ञ्चरः, नक्तञ्चारी, नक्तन्तनम्, नक्तन्दिनम्, नक्तन्दिवम् प्रभृति शब्द न बन सकेंगे।

[३२] नञ्*॥

१. नहीं, प्रतिषेध—**एकः स्वादु न भुञ्जीत, स्वार्थमेको न चिन्तयेत्। एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्** (सुभाषितसुधा०)। प्रतिषेध दो प्रकार का होता है—पर्युदास और प्रसज्य। इस का विवेचन पीछे (१८) सूत्र पर कर चुके हैं।

नोट—'नञ्' के अन्त्य ञकार का लोप हो जाता है अतः प्रयोग में 'न' ही आता है। यह अनुबन्ध इसलिये लगाया गया है कि **नलोपो नञः** (९४७) सूत्र में इसी नकार का ग्रहण हो अग्रिमपठित 'न' का न हो। अतः 'नैकधा' (नैषध० २.२) आदियों में उस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। इस नञ् के अनेक अर्थ होते हैं। यहां सरल साधारण प्रसिद्ध अर्थ लिख दिया है। 'ईषत्' अर्थ में भी यह कुछ २ प्रसिद्ध है—अनुदरा (अल्पोदरी) कन्या। नञ् के अर्थों का विशेष विस्तार वैयाकरणभूषणसार आदि उच्च ग्रन्थों में देखें।

[३३] न*॥

१. नहीं, प्रतिषेध—**योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति** (गीता० ५.६)। न चिरेण=नचिरेण। सुप्सुपेति समासः। **चित्रं चित्रं किमथ चरितं नैकभावाश्रयाणाम्। सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः** (हितोप० २.१६०)। इसी प्रकार—नैकधा, नान्तरीयम्, गमिकर्मीकृतनैकनीवृता (नैषध० २.४०) आदियों में समझना चाहिये।

[३४] हेतौ॥

१. निमित्त (में)—**हेतौ हृष्यति** (गणरत्न०)।

नोट—यह अव्यय हमें किसी ग्रन्थ में नहीं मिला। गणरत्नमहोदधि का यह उदाहरण भी सप्तम्यन्त हेतुशब्द से सिद्ध हो सकता है। अतः इस के प्रयोग अन्वे-ष्टव्य हैं।

[३५] इद्धा॥

१. प्रकट, जाहिर—**समिद्धमिद्धेश महो ददासि** (गणरत्न०)।

नोट—यह अव्यय हमें किसी ग्रन्थ में नहीं मिला । किसी कोषकार ने इस का उल्लेख नहीं किया । वैदिक साहित्य में भी इस का कहीं पता नहीं चला । उपर्युक्त उदाहरण गणरत्नमहोदधिकार श्रीवर्धमान (वैक्रम० ११९७) का है । अन्य सब व्याख्याकारों ने इसे ही उद्धृत किया है । वाचस्पत्यकोषकार ने यह उदाहरण भागवत का माना है परन्तु हमें यह भागवत में नहीं मिला ।

[३६] अद्धा ।।

१. वस्तुतः, यथार्थतः—**एष ह वा अनद्धा पुरुषो यो न देवानर्चति न पितॄन् न मनुष्यान्** (शत० ब्रा० ८.३.१.२४); जो देवताओं पितरों और मनुष्यों की पूजा नहीं करता वह वस्तुतः मनुष्य नहीं । **को अद्धा वेद** (ऋ० ३.५४.५); इस संसार को यथार्थतः कौन जान सकता है?। २. सचमुच, निस्सन्देह—**अद्धा नकिरन्यस्त्वावान्** (ऋ० १.४२.१३); हे प्रभो ! सचमुच तेरे जैसा कोई नहीं । **यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम्** (भागवत० १.१२.२८); निस्सन्देह वह अमरपद को पायेगा । ३. साक्षात्—**त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् । रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति** (भागवत० १.८.४२); हे मधुपते ! जैसे गङ्गा का प्रवाह निरन्तर समुद्र की ओर बढ़ता रहता है वैसे ही साक्षात् आप में मेरी सर्वदा अनन्यप्रीति हो ।

[३७] सामि*।।

१. आधा—सामिकृतम्, सामिभुक्तम् । **सामिभुक्तविषयाः समागमाः** (रघु० १९.१६) । **अभिवीक्ष्य सामिकृतमण्डनं यतीः** (माघ० १३.३१) । **सामि** (२.१.२२) इति समासः । २. निन्दित, आक्षेपयोग्य—उदाहरणम्मृग्यम् ।

[३८] वत्*। ब्राह्मणवत् । **क्षत्रियवत्** ।।

नोट—'वत्' यह प्रत्यय है । वतिँप्रत्ययान्त अव्यय हों—यह इस के ग्रहण का प्रयोजन है । यहां **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** (११४८), **तत्र तस्येव** (११४९), **तदर्हम्** (५. १. ११६) इन तीन सूत्रों से विहित वतिँप्रत्यय का ही ग्रहण समझना चाहिये । ब्राह्मणवत्, क्षत्रियवत्—ये दो वतिँप्रत्ययान्त के उदाहरण दिये गये हैं । इसी प्रकार—नृपवत्, बालवत्, चौरवत् आदि अन्य वत्यन्त शब्द भी जान लेने चाहियें । यह वतिँप्रत्यय सादृश्य अर्थ में प्रयुक्त होता है । यथा—ब्राह्मणवत्=ब्राह्मण के समान, क्षत्रियवत्=क्षत्रिय के समान इत्यादि । वस्तुतः इस अव्यय का पाठ यहां उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि वतिँप्रत्ययान्तों की अव्ययसंज्ञा तो **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** (३६८) से ही सिद्ध है ।

[३९] सना ।।

१. सदा, हमेशा, नित्य—**सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुः** (ऋ० १.१३९.८); धन नित्य रहें कभी नष्ट न हों । सना भवः—सनातनो धर्मः, **सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टयुटयुलौ तुँट् च** (४.३.२३) इति टयुप्रत्ययस्तस्य च तुँडागमः । **एष धर्मः सनातनः** (उत्तरराम० ५.२२) ।

[४०] सनत् ।।

१. सदा, हमेशा, नित्य—सनत्कुमारः (नित्य ब्रह्मचारी ब्रह्मपुत्र) ।

[४१] सनात् ।।

१. सदा, हमेशा, नित्य—**अशत्रुर्जनुषा सनादसि** (ऋ० १.१०२.८), हे इन्द्र! तू जन्म से ही सदा शत्रुरहित है । यह अव्यय वेद में ही देखा जाता है ।

[४२] उपधा ।।

नोट—इस अव्यय का प्रयोग हमें कहीं नहीं मिला । श्रीसभापतिशर्मोपाध्याय सिद्धान्तकौमुदी की 'लक्ष्मी' व्याख्या में इस अव्यय पर टिप्पण करते हुए **उपधा धर्माद्यैर्यत्परीक्षणम्** इस अमरकोषोक्त वचन की विवृति करने लगते हैं । यह ठीक नहीं । क्योंकि अमरकोषोक्त 'उपधा' आबन्त स्त्रीलिङ्ग है अव्यय नहीं ।

[४३] तिरस्*।।

१. टेढ़ा या तिरछा—**स तिर्यङ् यस्तिरोऽञ्चति**—इत्यमरः । तिरोदृष्टया समीक्षते । २. छिपना—**इति व्याहृत्य विबुधान् विश्वयोनिस्तिरोदधे** (कुमार० २.६२) । ३. अनादर—**गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम् । अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति** (भामिनी० १.७२) ।[1]

नोट—छिपना आदि अर्थों में तिरस् का प्रयोग प्रायः धातु के साथ ही पाया जाता है । **तिरोऽन्तधौं** (१.४.७०) सूत्र द्वारा छिपना अर्थ में तिरस् की गतिसंज्ञा हो जाती है । गतिसंज्ञा होने से **कुगतिप्रादयः** (९४९) द्वारा समास हो जाता है । समास होने के कारण **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** (८८४) से क्त्वा को ल्यप् हो जाता है । यथा—तिरोभूय, तिरोधाय इत्यादि । परन्तु कृञ् धातु के योग में 'छिपना' अर्थ होने पर भी **विभाषा कृञि** (१.४.७१) सूत्रद्वारा 'तिरस्' की विकल्प से गतिसंज्ञा होती है । गतिपक्ष में **कुगतिप्रादयः** (९४९) से समास हो कर क्त्वा को ल्यप् हो जाता है । यथा—तिरस्कृत्य । गतिसंज्ञा के अभाव में समास न होने से क्त्वा को ल्यप् नहीं होता । यथा—तिरः कृत्वा ।[2]

[४४] अन्तरा*।।

१. अन्दर से—**भवद्भिरन्तरा प्रोत्साह्य कोपितो वृषलः** (मुद्रा० ३); आप

---

1. वैदिक साहित्य में 'तिरस्' अव्यय का प्रयोग धातुयोग के बिना अकेले भी बहुत आता है यथा—**तिर इव वै देवा मनुष्येभ्यः** (शत० ब्रा० ३.१.१.८), देवता मनुष्यों से छिपे से रहते है । **स्त्रियस्तिर इवैव पुंसो जिघत्सन्ति** (शत० ब्रा० १.९.२.१२), स्त्रियां पुरुषों को मानो गुप्तरूप से खा जाती हैं । परन्तु लौकिक साहित्य में इस का प्रयोग प्रायः भू, धा, कृ धातुओं के योग में ही दृष्टिगोचर होता है ।
2. गतिपक्ष में **तिरसोऽन्यतरस्याम्** (८.३.४२) द्वारा विसर्ग को विकल्प से सकारादेश हो जाता है । यथा—तिरस्कृत्य, तिरःकृत्य । परन्तु 'तिरःकृत्वा' में गतिसंज्ञा न होने से सकारादेश भी नहीं होता ।

लोगों ने अन्दर से भड़का कर चन्द्रगुप्त को कुपित कर दिया है। २. मध्य में, बीच में—**त्रिशङ्कुरिव अन्तरा तिष्ठ** (शाकुन्तल० २), त्रिशङ्कु की तरह मध्य में लटके रहो। **मैनम् अन्तरा प्रतिबन्धय** (शाकुन्तल० ६); इसे बीच में मत टोको। **नाऽद्याच्चैव तथान्तरा** (मनु० २.५६) सवेरे-शाम दो भोजनों के मध्य में कुछ न खाए। ३. अन्दर ही अन्दर—**अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति** (मनु० १०.७१), अयोग्य खेत में डाला गया बीज अन्दर ही अन्दर नष्ट हो जाता है। ४. बिना, बग़ैर—**न प्रयोजनमन्तरा चाणक्यः स्वप्नेऽपि चेष्टते** (मुद्रा०), प्रयोजन के बिना चाणक्य स्वप्न में भी चेष्टा नहीं करता। ५. मार्ग में, रास्ते में—**अन्तरा चारणेभ्यस्त्वदीयं जयोदाहरणं श्रुत्वा त्वामिहस्थमुपागताः** (विक्रमो० १), मार्ग में ही चारणों से तुम्हारी यशोगाथा सुनकर तुम्हारे पास यहां आये हैं। ६. सदृश—**न द्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा** (रामायण० २.५७.१३) राम सदृश धार्मिक पुरुष फिर हम कभी नहीं देखेंगे।

नोट—**अन्तराऽन्तरेणयुक्ते** (२.३.४) सूत्रद्वारा अन्तरा के योग में द्वितीया विभक्ति का विधान है।

[४५] अन्तरेण*॥

१. बिना, बग़ैर—**न राजापराधमन्तरेण प्रजास्वकालमृत्युश्चरति** (उत्तरराम० २)। न चान्तरेण नावं तरीतुं शक्येयं सरित्। **क्रियान्तरान्तरायमन्तेरण आर्यं द्रष्टुमिच्छामि** (मुद्रा० ३), यदि किसी काम में विघ्न न हो तो आप के दर्शन करना चाहता हूं। २. मध्य में, बीच में, के विषय में—**त्वां माञ्चान्तरेण कमण्डलुः** (महाभाष्य), तेरे और मेरे बीच कमण्डलु है। **अथ भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः?** (शाकुन्तल० २), आप के विषय में इस का चक्षूराग कैसा था?

नोट—इस के योग में भी पूर्ववत् द्वितीया का विधान है।[1]

[४६] ज्योक्॥

१. दीर्घ काल तक, लम्बे समय यक—**ज्योक् च सूर्यं दृशे** (ऋ० १.२३.२१)। **सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या** (छान्दोग्योपनिषत् २.११.२)।

नोट—यह अव्यय प्रायः वैदिकसाहित्य में प्रयुक्त देखा जाता है।

[४७] कम्॥

१. जल—कं (जले) जायत इति **कञ्जम् (कमलम्)**। कम् (जलम्) अलंकरोतीति कमलम्। २. सुख—**कम्=सुखम् अस्त्यस्येति** कंयुः=सुखी। **कंशंभ्यां ब-भ-युस्-ति-तु-त-यसः** (५.२.१३८) इति मत्वर्थीयो युस्। **सिति च** (१.४.१६) इति पदत्वेनानुस्वारपरसवर्णौ। ३. सिर—कं (शिरसि) जायन्त इति कञ्जाः=केशाः।

---

१. **अन्तराऽन्तरेणयुक्ते** (२.३.४) सूत्र के भाष्य में भाष्यकार ने अन्तरा और अन्तरेण को निपात माना है। परन्तु निपातसंज्ञा करने के लिये तब इन का पाठ चादियों में मानना होगा। अतः यहां स्वरादियों में इन का पाठ प्रक्षिप्त समझना चाहिये

कं (शिर:) धारयतीति **कन्धरा = ग्रीवा** । ४. **निन्दनीय**—कं (कुत्सित:) दर्पोऽस्येति कन्दर्प:=काम: ।

[४८] शम्* ।।

१. सुख, शान्ति, कल्याण—**शं** (कल्याणं) करोतीति शङ्कर: । शङ्कर: शं करोतु न: । शं (सुखम्) अस्त्यस्येति शंयु:=सुखी । पूर्ववद् युस् ।

नोट—कम्-शम्शब्दयोर्विभक्तिप्रतिरूपकाव्ययत्वे सिद्धे स्वरादौ पाठश्चिन्त्य इति केचिदाहु: ।

[४९] सहसा* ।।

१. बिना, विचारे, यकदम, अचानक—**सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमापदां पदम्** (किरात० २.३०) । **सहसोत्पतिता: सर्वे स्वासनेभ्य: ससंभ्रमम्** (रामायण० २.१६.४) ।

[५०] विना* ।।

१. विना, बग़ैर—**दुर्भगाभरणप्रायो ज्ञानं भार: क्रियां विना** (हितोप० १.१८)।

नोट—इस अव्यय के योग में **पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्** (२.३.३२) सूत्र से द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी विभक्ति का विधान है ।

[५१] नाना* ।।

१. विना, बग़ैर—**नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा** (गणरत्न०), विना स्त्री के लोकयात्रा निष्फल है । २. अनेक प्रकार के—**नानाफलै: फलति कल्पलतेव भूमि:** (नीति० ३७) । **नानाशस्त्रप्रहरणा: सर्वे युद्धविशारदा:** (गीता० १.९) । ३. पृथक् रूप में—**मृत्यो: स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति** (कठो० ४.१०) । **विश्वं न नाना शम्भुना** (बोपदेव), यह जगत् शम्भु से पृथक् नहीं ।

नोट—इस अव्यय के योग में भी पूर्वोक्तसूत्र से द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी विभक्ति का विधान है ।

वक्तव्य—विना और नाना का पाठ भी 'वत्' की तरह यहां स्वरादियों में व्यर्थ सा प्रतीत होता है । **तद्धितश्चाऽसर्वविभक्ति:** (३६८) से ही इन की अव्ययसंज्ञा सिद्ध हो सकती है ।

[५२] स्वस्ति* ।।

१. मङ्गल, कल्याण, सुख—**स्वस्त्यस्तु ते** (रघु० ५.१७) । **स्वस्ति भवते** (शाकुन्तल० २) ।

नोट—इस अव्यय के योग में **नम:स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च** (८९८) सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का विधान है ।

[५३] स्वधा ।।

१. पितरों के निमित्त अन्न आदि देते समय उच्चार्यमाण विशिष्ट शब्द—पितृभ्य: स्वधा ।

नोट—इस अव्यय के योग में भी पूर्ववत् चतुर्थी का विधान है ।

[५४] अलम्* ।।

१. भूषित करना, सजाना—**वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते** (नीति० १५) । **अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते** (मनु० ३.२८)[1] । २. पर्याप्त होना, काफी होना, समर्थ होना—**तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै** (रघु० २.३९)। **अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रैः** (मेघ० २.५३) । **अलम्मल्लो मल्लाय** (काशिका)[2] । ३. निषेध करना, मना करना, रोकना—**अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्** (रघु० २.३४) । अलं हसितेन[3]। अलं बहु विकथ्य, बहुत डींग न मारिये। अलम् अन्यथा गृहीत्वा, अन्यथा ग्रहण न कीजिये । यहां के स्पष्टीकरण के लिये (८७८) सूत्र पर हमारी व्याख्या देखें ।

[५५–५७] वषट् । श्रौषट् । वौषट् ।।

१. देवताओं के निमित्त हविर्दान में—वषडस्तु तुभ्यम् (यजु० ११.३९) । **अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निम्** (ऋ० १.१३९.१) । **सोमस्याग्ने वीहि वौषट्** (ऐतेरय ब्रा० ४.५.४.६) ।

नोट—इन में से 'वषट्' के योग में **नमःस्वस्ति०** (८९८) द्वारा चतुर्थी विभक्ति होती है ।

[५८] अन्यत् ।।

१. अन्य, पुनः, इस के अतिरिक्त—**देवदत्त आयातोऽन्यच्च यज्ञदत्तः** (गण-रत्न०) । प्रयोग अन्वेषणीय हैं । विभक्ति-प्रतिरूपक अव्यय मान कर काम चल सकता है ।

[५९] अस्ति ।।

१. विद्यमान, मौजूद—**अतिथिर्बालकश्चैव राजा भार्या तथैव च । अस्ति नास्ति न जानन्ति देहि देहि पुनः पुनः** (चाणक्य०) । अस्तिक्षीरा (अस्ति=विद्यमानं क्षीरमस्याः) गौः । अस्ति (विद्यमानः परलोकः) इति मतिरस्येत्यास्तिकः । **अस्ति-नास्ति-दिष्टं मतिः** (४.४.६०) इति ठक्, **ठस्येकः** (१०२४) इति ठस्य इकादेशः । अस्तित्वम् ।

नोट—इसे तिङन्तप्रतिरूपक अव्यय भी माना गया है । विशेष चादिगण में 'अस्तिक्षीरा' शब्द पर देखें ।

---

१. यहां **भूषणेऽलम्** (१.४.६३) सूत्र से 'अलम्' की गतिसंज्ञा हो कर **कु-गति-प्रादयः** (९४९)द्वारा समास हो कर **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** (८८४)से क्त्वा को ल्यप् हो जाता है ।

२. इस अर्थ में **नमःस्वस्तिस्वाहा०** (८९८) सूत्रस्थ **अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्** (वा० ५२) वार्तिक से अलम् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

३. ऐसे स्थलों में अलम् के साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है । इस के स्पष्टीकरण के लिये इस व्याख्या के विभक्त्यर्थ-परिशिष्ट में (२०) संख्या देखें ।

[६०] उपांशु ॥

उपांशु विजनेऽव्ययम् इति विश्वः । १. एकान्त—**परिचेतुमुपांशु धारणां कुश-पूतं प्रवयास्तु विष्टरम्** (रघु० ८.१८); रघु ने वृद्धावस्था को प्राप्त हो कर एकान्त में धारणा का अभ्यास करने के लिये कुशापवित्र आसन को ग्रहण किया ।

नोट—**जिह्वौष्ठौ चालयेत् किञ्चिद् देवतागतमानसः । निजश्रवण-योग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः** । इस प्रकार का जप भी 'उपांशु' कहाता है परन्तु वह प्रायः उकारान्त पुंलिङ्ग होता है अव्यय नहीं ।

[६१] क्षमा ॥

१. क्षमा, माफ़ी—**क्षमा करोतु भवान्** (व्या० सि० सु०)।

नोट—इस अव्यय के संस्कृतसाहित्य में प्रयोग अन्वेषणीय हैं । यदि इसे अव्यय मानना ही हो तो विभक्तिप्रतिरूपक माना जा सकता है, अथवा स्वरभेदार्थ यहां पाठ किया गया है ।

[६२] विहायसा ॥

१. आकाश—**विहायसा पश्य विहङ्गराजम्** (हेमचन्द्र) । **विहायसा रम्यमितो विभाति** (व्या० सि० सु०)। इस अव्यय के प्रयोग अन्वेषणीय हैं। संस्कृत में आकाश-वाचक तथा पक्षिवाचक सकारान्त विहायस् शब्द बहुत प्रसिद्ध है—**विहायाः शकुनौ पुंसि, गगने पुन्नपुंसकम्**—इति मेदिनी ।

[६३] दोषा ॥

१. रात्रि—**दोषापि नूनमहिमांशुरसौ किलेति** (माघ० ४.४६), रात्रि के समय भी वह (चन्द्र) सूर्य है ऐसा समझ कर । **दोषामन्यम् अहः** (महाभाष्य), घने बादलों या धुन्ध के कारण अपने आप को रात्रि समझने वाला दिन । यहां 'दोषा' के अव्यय होने से **खित्यनव्ययस्य** (८०६) से ह्रस्व नहीं होता ।

नोट—'दोषा' यह रात्रिवाचक आकारान्त स्त्रीलिङ्ग भी प्रयोग में देखा जाता है । यथा—**ततः कथाभिः समतीत्य दोषाम्** (भट्टि० २२.२४) ।

[६४] मृषा* ॥

असत्य, झूठ, मिथ्या । **अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम् । मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नलः** । (नैषध० १.१५) । **मृषा मिथ्या च वितथे**—इत्यमरः ।

[६५] मिथ्या* ॥

१.झूठ असत्य—**मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः** (शाकुन्तल० २.५) । २. व्यर्थ, बेकार—**ज्योतिषं जलदे मिथ्या, मिथ्या श्वासिनि वैद्यकम् । योगो बह्वशने मिथ्या, मिथ्याज्ञानं च मद्यपे** (समयोचित०) ।

[६६] मुधा ॥

१. व्यर्थ में—**रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवः** (वैराग्य० ४४)।

सीतया रामचन्द्रस्य गले कमलमालिका । मुधा बुधा भ्रमन्त्यत्र प्रत्यक्षेपि क्रियापदे (सुभाषित०) । 'प्रत्यक्षेपि' इति कर्मणि लुँङ्प्रयोगः ।

[६७] पुरा* ।।

१. प्राचीन समय में, व्यतीतकाल में—**पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः । अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावाद् अनामिका सार्थवती बभूव** (सुभाषित०) । **पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खलत्-परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः । स पल्वलजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले, मरालकुलनायकः कथय रे कथं वर्तताम्** (भामिनी० १.२)। २. प्रबन्ध (क्रियासातत्य) में—**उपाध्यायेन स्म पुराधीयते** (गणरत्न०) उपाध्याय ने निरन्तर पाठ किया । ३. निकट भविष्य में—**आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा** (मेघ०२.२२), बलिकर्म में लगी हुई शीघ्र ही वह तेरी दृष्टि में आएगी। **पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः** (शाकुन्तल० ७.३३), आगे निकट भविष्य में यह (सर्वदमन) अप्रतिम योधा बन कर सप्तद्वीपा सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय करेगा । इस अर्थ में 'पुरा' के योग में **यावत्पुरानिपातयोर्लट्** (३.३.४)से भविष्यत्काल में भी लँट् का प्रयोग होता है ।

[६८] मिथो ।।

१. एकान्त । २. परस्पर—**मन्त्रयन्ते मिथो** (शब्दकौस्तुभ) ।

नोट—इस अव्यय के प्रयोग अन्वेषणीय हैं । कुछ लोग 'मिथो+अत्र, मिथो+इति, इत्यादियों में **ओत्** (५६) सूत्रद्वारा प्रगृह्यसंज्ञा कर प्रकृतिभाव करते है। परन्तु इस प्रकार मानने से इस का पाठ चादियों में करना होगा अन्यथा **चादयोऽसत्त्वे** (५३) से निपातसंज्ञा न हो सकेगी ।

[६९] मिथस्* ।।

मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि—इत्यमरः । १. परस्पर—**तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्** (लघुसिद्धान्तकौमुदी १० सूत्र पर) । **कामान् माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः** (मनु० २.१४७) । २. एकान्त—**रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच** (रघु० १३.१), मिथः=रहसि । **भर्तुः प्रसादं प्रतिनन्द्य मूर्ध्ना वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम्** (कुमार० ३.२) ।

[७०] प्रायस् * ।।

१. बहुधा, अक्सर, बहुत बार—**प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः** (मुद्रा० ४.२२) । **प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः** (नीति० ८४) । २. सम्भवतः—**तव प्राज्ञ प्रसादादिह प्रायः प्राप्स्यामि जीवितम्** (महाभारत०)

नोट—इसी अर्थ में घञन्त पुंलिङ्ग 'प्राय' शब्द का भी बहुत प्रयोग देखा जाता है । यथा—मृतप्रायो गर्दभः, शालिप्राया भूमिः, कष्टप्रायं शरीरम् । पूर्ण अर्थ में भी इस घञन्त का प्रयोग देखा जाता है—अमृतप्रायं वचनम् । प्रायोपवेशनम्=अन्नादित्यागपूर्वक मृत्यु के लिये बैठ जाना, मरणव्रत रखना ।

[७१] मुहुस्* ।।

१. पुनः पुनः, बार बार—**ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टि:** (शाकुन्तल० १.७) । **मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना । मुहुः सम्पूर्णाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः । मुहुर्भ्रश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफलेत्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः** (मुद्रा० ५.३) । **मुहुर्मुहुः**=बार बार—**मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि** (सुभाषित) ।

[७२-७३] प्रवाहुकम् । प्रवाहिका ।।

१. समानकाल, उसी समय । २. ऊर्ध्व । **प्रवाहुकं गृह्णीयात्** (गणरत्न०) ।

नोट—कई गणपाठों में 'प्रवाहुकम्' के स्थान पर 'प्रवाहिका' पाठ पाया जाता है । इन अव्ययों के प्रयोग अन्वेषणीय हैं । किसी कोष में इन का उल्लेख नहीं । ग्रहणीरोगवाची 'प्रवाहिका' शब्द टाबन्त होता है । स्वामी दयानन्दसरस्वती ने 'प्रवाहुकम्' पाठ मान कर उस का 'प्राबल्य' अर्थ किया है । इस अर्थ में 'प्रवाहुक्' शब्द तो काठकसंहिता में देखा जाता है—**देवा वा असुरान् यज्ञमभिजित्य ते प्रवाहुग्ग्रहान् गृह्णाना आयन्** (काठकसंहिता २९.६) । सम्भव है कि इस शब्द का किसी लुप्तशाखा में उल्लेख हो ।

[७४] आर्यहलम् ।।

१. बलपूर्वक, ज़बरदस्ती—**आर्यहलं गृह्णाति** (गणरत्न०) ।

नोट—इस अव्यय के प्रयोग अन्वेषणीय हैं ।

[७५] अभीक्ष्णम्* ।।

१. निरन्तर, बार बार, पुनः पुनः—**क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्** (पञ्च० २.१९२) ।

[७६] साकम्* ।।

१. के साथ—**आस्स्व साकं मया सौधे माधिष्ठा निर्जनं वनम्** (भट्टि० ८.७९) । **साकं ग्रावगणैर्लुठन्ति मणयो बालार्कबिम्बोपमाः** (भामिनी० १.४०) ।

नोट—साकम्, सार्धम्, समम्, सह आदि सहार्थक अव्ययों के योग में अप्रधान में **सहयुक्तेऽप्रधाने** (२.३.१९) द्वारा तृतीया विभक्ति का विधान है ।

[७७] सार्धम्* ।।

१. के साथ—**नाश्नीयाद् भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्** (मनु० ४.४३) । **वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः** (रघु० १४.६३) ।

[७८] नमस्* ।।

१. नमस्कार—**नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति** (नीति० ९१) । **येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः । तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः** (पाणिनीयशिक्षा ५८) ।

नोट—इस अव्यय के योग में **नमःस्वस्तिस्वाहा०** (८९८) सूत्र द्वारा चतुर्थी विभक्ति का विधान है । इस अव्यय के 'अन्न, वज्र' आदि अन्य अनेक अर्थ भी वेद में प्रसिद्ध हैं ।

[७६] हिरुक् ।।

पृथग्विनाऽन्तरेणर्ते हिरुङ्नाना च वर्जने—इत्यमरः । १. विना, बग़ैर—**हिरुक् कर्म न मोक्षः स्यात्** (व्या० च०), विना कर्म के मोक्ष दुर्लभ है । २. समीप—**पर्वतस्य हिरुङ् नदी** (व्या० च०), पर्वत के समीप नदी है । ३. तिरोहित—**य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्** (ऋ० १.१६४.३२) ।

नोट—यह अव्यय प्रायः वैदिकसाहित्य में उपलब्ध होता है ।

[८०] धिक्* ।।

१. धिक्कार— **धिक् तां च तं च मदनं च इमाञ्च माञ्च** (नीति० २) । **रामं सीतां लक्ष्मणं जीविकार्थे विक्रीणीते यो नरस्तञ्च धिग् धिक् । अस्मिन् पद्ये योऽपशब्दं न वेत्ति व्यर्थप्रज्ञं पण्डितं तञ्च धिग्धिक्** (सुभाषित०) ।[1]

नोट—इस अव्यय के योग में **उभसर्वतसोः कार्या०** (वा०) द्वारा द्वितीया का विधान है ।

[८१] अथ* ।।

१. आरम्भ अर्थ में—**अथ शब्दानुशासनम्** (अष्टाध्याय्या आदौ)। अथ **योगानुशासनम्** (योगदर्शन १.१) । २. अनन्तर अर्थ में—**अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् । वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच** (रघु० २.१); अथ=निशानयनानन्तरमित्यर्थः । **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** (वेदान्तसूत्र १.१.१), अथ=साधनचतुष्टयानन्तरमित्यर्थः । ३. विकल्प अर्थ में— **शब्दो नित्योऽथानित्यः** (गणरत्न०), शब्द नित्य है या अनित्य ? । ४. प्रश्न या प्रश्नावतरण में (यह बताइये—इस अर्थ में)—**अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी** (शाकुन्तल० ७), अच्छा तो यह बताइये कि वह आदरणीया किस राजर्षि की पत्नी है ? । **न चेन्मुनिकुमारोऽयम् अथ कोऽस्य व्यपदेशः ?** (शाकुन्तल० ७), यदि यह मुनिकुमार नहीं तो इस का कुल क्या है ? । **अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः** (गीता० ३.३६), तो यह पुरुष किस से प्रयुक्त हुआ पापाचरण करता है ? । **५.** समुच्चय में—**गणितमथ कलां वैशिकीम्** (मृच्छ० २.३), गणित तथा वेश्यागृहसम्बन्धी कला को । **मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा । सम्पूज्या गुरुपत्नीवत् समास्ता गुरुभार्यया** (मनु० २.१३१) । ६. यदि, अगर (पक्षान्तर) अर्थ में—**अथ चेत् त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि** (गीता० २.३३); यदि तुम इस धार्मिक संग्राम को नहीं करोगे । **अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः क्रियेत** (हितोप० ३.१४१), यदि मृत्यु अवश्य होनी ही है तो व्यर्थ में अपना यश क्यों कलङ्कित किया जाये ?। ७. मङ्गल—इस अर्थ का विवेचन चादिगणप्रोक्त 'अथ' निपात पर देखें ।

[८२] अम् ।।

१. शीघ्र, २. अल्प । इस के प्रयोग अन्वेषणीय हैं ।

---

१. अत्र **इवे प्रतिकृतौ** (१२३४) इति विहितस्य कनः **जीविकार्थे चापण्ये** (५.३.९९) इति लुपोऽभावाद् 'रामकम्, सीतिकाम्, लक्ष्मणकम्' इत्येव प्रयोगाः साधवः ।

नोट—वर्त्तमान उपलब्ध लौकिक वा वैदिकसाहित्य में हमें यह अव्यय कहीं नहीं मिला। दीक्षित आदि इसे प्रत्यय मानते हैं। उन का कथन है कि **अमुँ च च्छन्दसि** (५.४.१२) सूत्र से विहित अम्प्रत्ययान्त की अव्ययसंज्ञा होती है। उदाहरण यथा—**प्र तं नय प्रतरं वयस्यः** (यजु० १२.२६)। परन्तु चाहे यहां 'अम्' से प्रत्यय भी समझ लें तो भी **तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः** (३६८) से ही इस के अव्ययसंज्ञक हो जाने से यहां ग्रहण व्यर्थ सा प्रतीत होता है।

[८३] आम् ॥

१. स्वीकृति या स्मृति द्वारा 'जी हां' के अर्थ में—**आम् ! ज्ञातम्** (शाकुन्तल० ३)।

नोट—कई वैयाकरण यहां भी पूर्ववत् **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** (५.४.११) आदि सूत्रों से विहित आम्प्रत्ययान्तों की अव्ययसंज्ञा मानते हैं।

[८४] प्रताम् ॥

१. ग्लानि—इस के उदाहरण अन्वेष्टव्य हैं।

नोट—'प्रताम्' शब्द प्रपूर्वक तम् (**तमुँ काङ्क्षायाम्**) धातु से क्विँप् प्रत्यय कर उपधादीर्घ (७२७) करने से निष्पन्न होता है। यहां सुँब्लुक् हो जाने पर **मो नो धातोः** (२७०) से इस के मकार को नकार नहीं होता क्योंकि यदि ऐसा करना होता तो आचार्य इस गण में प्रशान् (प्रतान्) शब्दों को नकारान्त निर्दिष्ट न करते।

[८५] प्रशान् ॥

१. तुल्य, सदृश, समान—**प्रशान् देवदत्तो यज्ञदत्तेन** (गणरत्न०)।

नोट—इस के प्रयोग अन्वेषणीय हैं। कई वैयाकरण 'प्रशान्' के स्थान पर 'प्रशाम्' पाठ मानते हैं। कुछ अन्य लोग यहां 'प्रतान्' शब्द को भी पढ़ते हैं।

[८६] मा* ॥

१. निषेध (मत) अर्थ में—**मा जानीत विदर्भजामविदुषीम्** (नैषध० १५.८६)। **मा ब्रूहि दीनं वचः** (नीति० ५१)। **माऽसमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्** (हितोप० १.१०२)। **मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि** (गीता० २.४७)। २. 'ऐसा न हो' इस अर्थ में—**मा कश्चिन्ममाप्यनर्थो भवेत्** (पञ्च० ५), ऐसा न हो कि मुझ पर भी कोई अनर्थ आ पड़े। **लघु एनां परित्रायस्व मा कस्यापि तपस्विनो हस्ते पतिष्यति** (शाकुन्तल० २), शीघ्र ही इसे बचाइये ऐसा न हो कि यह किसी तपस्वी के हाथ में पड़ जाये। ३. धिक्कार—**मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति** (माघ० २.४५), धिक्कार है उस के जीवन पर जो शत्रुओं से तिरस्कृत हुआ भी जीता है।

नोट—कुछ वैयाकरण इस अव्यय को नहीं मानते केवल अग्रिम 'माङ्' को ही स्वीकार करते हैं। इस विषय का स्पष्टीकरण इस व्याख्या के द्वितीय-भागस्थ **माङि लुङ्** (४३५) सूत्र पर देखें।

[८७] माङ्* ॥

१. मत—**पापे रतिं मा कृथाः** (भागवत० २.७७), पाप में प्रेम मत कर।

'स्म' के साथ इस के प्रयोग बहुत प्रसिद्ध हैं—**क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते** (गीता० २.३)। **माङि लुङ्** (४३५) तथा **स्मोत्तरे लँङ् च** (४३६) सूत्रों द्वारा केवल माङ् के योग में लुङ् तथा स्म के साथ लँङ् लुँङ् का विधान है। **न माङ्योगे** (४४१) से अट् आट् के आगम नहीं होते।[1]

आकृतिगणोऽयम् ॥

यह स्वरादिगण आकृतिगण है अर्थात् स्वरादिशब्द केवल इतने ही नहीं जितने परिगणित किये गये हैं, अपितु इन के अतिरिक्त अन्य जिन शब्दों में अव्ययकार्य पाया जाये उन को भी इस गण में सम्मिलित कर लेना चाहिये। आकृतिगण का स्पष्टीकरण पीछे (३९)सूत्र पर कर चुके हैं। स्वरादिगण में गिनने योग्य कुछ अन्य शब्द यथा—

(१) समम्*=के साथ। **दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिञ्चापि न कारयेत्। उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्** (हितोप० १.८०)। इस के योग में तृतीया विभक्ति होती है—**सहयुक्तेऽप्रधाने** (२.३.१९)।

(२) सत्रा*=साथ। **सत्रा पुत्रकलत्रमित्रनिवहैः** (रामचरितम्० २.९४)। पूर्ववत् तृतीया।

(३) झटिति*=शीघ्र। **झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः** (नैषध०)।

(४) तरसा*=शीघ्र। **तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप बलवद्बली** (रामायण० ५.४४.११)। तृतीयान्त 'तरस्' से काम चल सकता है, इसे अव्यय मानना अनावश्यक है।

(५) द्राक्*=शीघ्र। **द्राग्विद्रुतं कातरैः** (गणरत्न०), कायर शीघ्र भाग गये।

(६) अञ्जसा=शीघ्र। **स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम्** (मनु० २.२४)।

(७) मङ्क्षु=शीघ्र। **मङ्क्षूदपाति परितः पटलैरलीनाम्** (माघ० ५.३७), भौंरों के समूह चारों तरफ झटपट उड़ गये।

(८) सपदि*=शीघ्र, तत्क्षण। सपदि **कुमुदिनीभिर्मीलितम्** (माघ० ११.२४)।

(९) भूयस्*=पुनः, फिर। **भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्त्ती किञ्चिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे** (रघु० २.४६)। अत्यधिक, बार बार। **भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन न निम्ब-वृक्षो मधुरत्वमेति** (सुभाषित०)।

(१०) कामम्*=भले ही। **कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः** (स्वप्न० ४.८)। **मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं नैव गच्छति** (हितोप० १.१३३)। निश्चय ही। **कामं व्यसनवृक्षस्य मूलं दुर्जनसंगतिः** (कथासरित्०)। कामम्=निश्चय ही।

(११) संवत्*(सवँ वत्)=वर्ष, विशेषतः वैक्रमाब्द। 'संवत्सर' का संक्षेप है।

---

१. **मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वम् अगमः शाश्वतीः समाः।**
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकम् अवधीः काम-मोहितम् ॥ (रामायण० १.२.१५)
यहां 'अगमः' में अट् आगम आर्ष समझना चाहिये। अथवा यहां माङ् का प्रयोग न हो कर पूर्वोक्त 'मा' का प्रयोग ही समझा जा सकता है।

(१२) बदि*=कृष्णपक्ष। 'बहुलदिवस' का संक्षेप है। 'वदि' भी लिखते हैं।

(१३) शुदि*=शुक्लपक्ष। 'शुक्ल-दिवस' का संक्षेप है। 'सुदि' भी होता है।

(१४) साक्षात्*=प्रत्यक्ष, सामने उपस्थित। **मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्** (शाकुन्तल० १.६)। **साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः** (निरुक्त १)।

(१५) साचि=टेढ़ा। **साचि लोचनयुगं नमयन्ती** (किरात० ६.४४)।

(१६) अजस्रम्*=निरन्तर। **पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रम्** (उत्तरराम० ४.२६)।

(१७) अनिशम्*=निरन्तर। **तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव** (शाकुन्तल० ३.१४)।

(१८) वरम्*=अच्छा, अपेक्षाकृत अच्छा। **वरमद्य कपोतः श्वोमयूरात्** (लोकोक्ति)। **याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाऽधमे लब्धकामा** (मेघ० ६)। **वरं भिक्षाशित्वं न च परधनाऽऽस्वादनसुखम्** (हितोप० १.१३७)।

(१९) स्थाने*=उचित, ठीक, योग्य। **स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति** (रघु० ५.१६)।

(२०) कृतम्*='अलम्' के अर्थ में, बस, निषेध, रोकना। **अथवा कृतं सन्देहेन** (शाकुन्तल० १), अथवा अब सन्देह नहीं करना चाहिये। **प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथवा गिरा कृतम्** (रघु० ११.४१)। इस के योग में तृतीया का प्रयोग होता है।

(२१) प्रादुस्*=प्रकट, उत्पन्न। **ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः प्रादुरास बहुलक्षपाच्छविः** (रघु० ११.१५), राम-लक्ष्मण के धनुष की टंकार को सुनती हुई कृष्णपक्ष की रात्रि के समान वर्ण वाली ताडका प्रकट हुई। इस का प्रयोग प्रायः भू, कृ, अस् धातुओं के साथ ही मिलता है।

(२२) आविस्*=प्रकट। **तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति** (शाकुन्तल० ५.१४), सूर्य के चमकते हुए अन्धेरा कैसे प्रकट होगा? **तेषामाविरभूद् ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम्** (कुमार० २.२)।

(२३) प्रकामम्*=यथेच्छ, बहुत। **प्रकाममभ्यस्यतु नाम विद्यां सौजन्यमभ्यासवशादलभ्यम्** (सुभाषित)। **जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा** (शाकुन्तल० ४.२२)। अनव्यय 'प्रकाम' शब्द भी बहुधा प्रयुक्त होता है—**न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः** (रघु० १.६६)।

(२४) उषा=रात्रि का अन्त, भोर वेला, प्रातः काल। **उषा रात्रेरवसाने**—इत्यमरः। **उषा स्याद्रजनीशेषे 'उषः' इत्यपि दृश्यते**—इति रभसः। इस के प्रयोग अन्वेष्टव्य हैं। सुप्रसिद्ध 'उषस्' शब्द सकारान्त स्त्रीलिङ्ग है—उषाः, उषसौ, उषसः।

(२५) ओम्*=स्वीकार करना। **द्वितीयश्चेद् ओमिति ब्रूमः** (साहित्यदर्पण० १)। **ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिणः** (माघ० १.७५)। **ओमित्युच्यताममात्यः** (मालती० ६), मन्त्री को कह दो कि हमें स्वीकार है। 'ओम्' यह परब्रह्म का वाचक भी है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् (कठोप० २.१५) ।

(२६) अवश्यम्*=जरूर, अवश्य। **अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषयाः** (वैराग्य० १२) । समास में कृत्यप्रत्ययान्त शब्द के परे होने पर 'अवश्यम्' के मकार का लोप हो जाता है—**लुम्पेदवश्यमः कृत्ये** (वा०) । यथा—अवश्यपाच्यम्, अवश्यलाव्यम्, अवश्यस्तुत्यः ।

(२७) सम्प्रति*=अब । **सम्प्रति मित्रलाभः प्रस्तूयते यस्यायमाद्यः श्लोकः** (हितोप० १) ।

(२८) साम्प्रतम्*=अब, आजकल । **धनं साम्प्रतं वन्ध्यमास्ते न विद्या** (कस्यचित्) । उचित, युक्त, मुनासिब— **हन्त स्थानं क्रोधस्य साम्प्रतं देव्याः** (वेणीसंहार० १) । **युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने**—इत्यमरः ।

(२९) सुष्ठु*=अच्छा, ठीक, युक्त । अथवा सुष्ठु खल्विदमुच्यते । सुष्ठूक्तं त्वया । बहुत अच्छी तरह – **सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र एतेन विनयमाहात्म्येन** (उत्तरराम० १) । इस का स्वरभेदार्थ चादियों में भी परिगणन किया गया है ।

(३०) दुष्ठु=बुरा । **यत्र मा दुष्ठु मन्यसे** (बुद्धचरित० ४.८४) । **निन्दायां दुष्ठु सुष्ठु प्रशंसने**—इत्यमरः ।

(३१) मिथु या मिथुर् (?)=दोनों, परस्पर । **ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः** (भागवत० ११.६.१४) ।

(३२) असाम्प्रतम्*=अयुक्त । **विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्** (कुमार० २.५५) ।

(३३) कु*=कुत्सित, बुरा । **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति** (देवीक्षमा० १) । थोड़ा, अल्प— **सुपूरा स्यात् कुनदिका** (पञ्च० १.२६) । पृथ्वीवाचक 'कु' अव्यय नहीं है उकारान्त स्त्रीलिङ्ग है— **गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्मावनिर्मेदिनी मही**—इत्यमरः । कौ मोदत इति कुमुदम् ।

(३४) सु*=अच्छा, अच्छी तरह । **सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः । सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्** (हितोप० १.२२) ।

(३५) चिरेण*=चिर काल बाद । **कियच्चिरेण आर्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यति** (शाकुन्तल० ६), कितने चिर बाद आर्यपुत्र सन्देश भेजेंगे ? । **चिरेण संज्ञां प्रतिलभ्य भूयो विचिन्तयामास विशालनेत्रा** (रामायण० सुन्दर० ३२.८), बहुत काल के बाद होश में आकर वह विशालाक्षी पुनः सोचने लगी। नचिरेण, अचिरेण=शीघ्र । 'न' अव्यय के साथ सुप्सुपा-समास हो कर 'नचिरेण' तथा 'नञ्' अव्यय के साथ नञ्तत्पुरुषसमास होकर 'अचिरेण' बनता है । **योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति** (गीता० ५.६) । **अचिरेणैव सीदति** (मनु० ७.१३४) ।

(३६) चिराय*=चिर काल तक, देर तक । **प्रीताऽस्मि ते सौम्य चिराय जीव**

(रघु० १४.५६) । **काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुङ्क्ते** (पञ्च० १.२५) ।

(३७) चिररात्राय=चिरकाल के लिये । **प्रतियाते महारण्यं चिररात्राय राघवे । बभूव नगरे मूर्च्छा बलमूर्च्छाजनस्य च** (रामायण० २.४०.१८), राम के चिरकाल के लिये वन को चले जाने पर नगर में मूर्छा छा गई ।

(३८) चिरात्*=बहुत काल के बाद । **भो भगिनीसुत ! किमिति चिराद् दृष्टोऽसि** (पञ्च० ४), हे भाञ्जे ! क्या कारण है बहुत काल के बाद दिखाई दिये हो ? । चिर तक, बहुत काल तक—**तदक्षयं महद् दुःखं नोत्सहे सहितुं चिरात्** (रामायण० २.२०.४६), मैं उस अक्षय महान् दुःख को बहुत काल तक न सह सकूंगी । नचिरात्-अचिरात्=शीघ्र । **तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्** (गीता० १२.७) । **अचिराद्उपकर्त्तुराचरेदथवाऽऽत्मौपयिकीमुपक्रियाम् । पृथुरित्थमथाणुरस्तु सा न विशेषे विदुषामिह ग्रहः** (नैषध० २.१४) ।

(३९) चिरस्य=चिरकाल के बाद । **समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः** (शाकुन्तल० ५.१५), तुल्य गुणों वाले वधू-वर का जोड़ा बनाते हुए आज चिरकाल के बाद प्रजापति निन्दा को प्राप्त नहीं हुआ । **चिरस्य बत पश्यामि दूराद् भरतमागतम्** (रामायण० २.१००.५) ।

(४०) चिरे=देर तक । **चिरे कुर्यात्** (शतपथब्रा०)। इस का लोक में प्रयोग बहुत कम होता है ।

इस प्रकार शिष्टग्रन्थों के प्रयोग से अन्य स्वरादि भी जानने चाहियें ।

स्वरादिनिपातमव्ययम् (३६७) सूत्र में निपातों की भी अव्ययसंज्ञा की गई है । निपातों का सम्पूर्ण वर्णन अष्टाध्यायी में **प्राग्रीश्वरान्निपाताः** (१.४.५६) सूत्र के अधिकार में किया गया है । इस अधिकार के दो सूत्र **चादयोऽसत्त्वे** (५३) तथा **प्रादयः** (५४) पीछे अच्सन्धिप्रकरण में निर्दिष्ट किये जा चुके हैं । चादि तथा प्रादि गणों में पठित शब्द असत्त्व अर्थ में निपात होते हैं । इन में से प्रादिगण का निर्देश (३५) सूत्र पर पीछे किया जा चुका है अब चादिगण का परिगणन करते हैं । निपात होने से चादि अव्यय हैं—यह नहीं भूलना चाहिये ।[1]

---

१. चादिगण को यदि स्वरादिगण में सम्मिलित कर देते तो भी इस की अव्ययसंज्ञा सिद्ध हो सकती थी तो पुनः इस की निपातसंज्ञा का यह प्रयोजन है कि **चादयोऽसत्त्वे** (५३) सूत्र में 'असत्त्व' कथन के कारण द्रव्यवाचक चादियों की निपातसंज्ञा और उस के कारण अव्ययसंज्ञा न हो । यथा—

'पशु' शब्द चादिगण में पढ़ा गया है । 'पशु' शब्द के दो अर्थ होते हैं । एक—पशु=चौपाया, जानवर, दूसरा पशु=सम्यक्, अच्छी तरह । चौपाया अर्थ वाला 'पशु' शब्द द्रव्यवाचक होने से न निपातसंज्ञक होता है और न अव्ययसंज्ञक । यथा—पशुं पश्य (चौपाये को देखो), यहां अव्ययसंज्ञा न होने से पशु शब्द से परे द्वितीयाविभक्ति का लुक् (३७२) नहीं होता । पशु पश्य (ठीक

[१] च* ।।

१. समुच्चय[1]—**अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्** (हितोप० ३)। **स शापो न त्वया राजन् न च सारथिना श्रुतः** (रघु० १.७८)। २. अन्वाचय—**भो भिक्षामट गाञ्चानय** (गणरत्न०), भिक्षा के लिये घूमो और (यदि मार्ग में गौ मिल जाये तो) गाय को भी लेते आना। ३. इतरेतरयोग—**तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी। तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः** (रघु० १.५७)। ४. समाहार—**पाणी च पादौ च पाणिपादम्** (गणरत्न०)। ५. परन्तु, लेकिन—**शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य** (शाकुन्तल० १.१५)। **अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः** (हितोप० १३)। ६. तुल्ययोगिता (ज्यों ही त्यों ही)—**ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः** (रघु० १०.६); ज्योंही वे क्षीरसागर पर पहुंचे त्योंही आदिपुरुष (विष्णु) जाग गये। ७. अवधारण (ही)—**अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोः** (गणरत्न०), हे देव! यस्तव महिमा स वाङ्मनसयोः पन्थानं मार्गमतीत एव। **कर्मक्षयाच्च निर्वाणम्** (व्या० च०), कर्मों के क्षय से ही मोक्ष प्राप्त होता है। ८. यदि (अगर)—**जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु** (महाभारत), हे मूढ! यदि तुम जीना चाहते हो तो मुझ से कारण सुनो। ९. पादपूर्ति—**भीमः पार्थस्तथैव च** (गणरत्न०)।

[२] वा* ।।

१. विकल्प—**यवैर्वा व्रीहिभिर्वा यजेत** (सुप्रसिद्धा श्रुतिः)। २. अथवा, या—**काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा** (हितोप० १.१)। **श्वशुरगृहनिवासः स्वर्गतुल्यो नराणां यदि भवति विवेकी पञ्च वा षड् दिनानि** (समयोचित०)[2]। ३. समुच्चय—**अस्ति ते माता स्मरसि वा तातम्**

तरह से देखो), यहां 'पशु' शब्द द्रव्यवाचक नहीं अतः निपात होने से उस की अव्ययसंज्ञा हो कर सुँब्लुक् हो जाता है। इसीप्रकार लक्ष्मीवाचक 'मा' शब्द की अव्ययसंज्ञा नहीं होती, निषेधवाचक की ही होती है।

अब यदि चादियों का पाठ स्वरादियों में ही होता और उन की निपातसंज्ञा न की जाती तो 'पशु पश्य' इत्यादि स्थलों की तरह 'पशुं पश्य' इत्यादियों में भी अव्ययसंज्ञा हो जाने से अनिष्ट हो जाता जो अब नहीं होता। सार यह है कि—स्वरादियों में तो द्रव्यवाचक की भी अव्ययसंज्ञा हो जाती है, यथा—स्वः पश्य (स्वर्ग को देख)। परन्तु चादियों में द्रव्यवाचक की नहीं होती। किञ्च—**निपाता आद्युदात्ताः** (फिट्सूत्र ८०) द्वारा आद्युदात्तस्वर भी निपातसंज्ञा का प्रयोजन है।

१. समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग, समाहार—शब्दों की विस्तृत व्याख्या इस व्याख्या के द्वन्द्वसमासप्रकरण में **चार्थे द्वन्द्वः** (९८२) सूत्र पर देखें।

२. इस श्लोक का उत्तरार्ध इस प्रकार है—**दधि-मधु-घृतलोभान्मासमेकं वसेच्चेद् भवति विगतलज्जो मानवो मानहीनः।** (मालिनी छन्द है)।

(उत्तररामचरित ४) । ४. इव=सदृश—**जातां मन्ये तुहिनमथितां पद्मिनीं वाऽन्य-रूपाम्** (मेघ० २.२०), मैं मानता हूं कि वह मेरी प्रिया हिममर्दित कमलिनी की तरह विकृतरूप को प्राप्त हो गई है। **हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी** (मृच्छ० ५.६), प्रसन्न एवम् अतिगर्वित बल वाले दुर्योधन के समान मोर गरज रहा है । ५. वाक्यालंकार—**परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते** (पञ्च० १.२८) ।

[३] ह ॥

१. कहते हैं, सुनते हैं—इस प्रकार पिछली अतीत घटना को बताने में—**तस्य ह शतं जाया बभूवुः** (ऐतरेयब्रा०), कहते हैं कि उस की सौ स्त्रियां थीं। **द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च** (बृहदारण्यकोप० १.३.१), सुनते हैं कि देव और असुर दोनों प्रजापति की सन्तानें हैं। **उषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास** (छान्दोग्योप० १.१.१), कहते हैं कि चक्र का गोत्रापत्य उषस्ति महावतों के ग्राम में दुर्गत अवस्था में रहता था । पादपूर्ति में—**इति ह स्माहुराचार्याः** (गणरत्न०) ।

नोट—इस का प्रयोग बहुधा वैदिक ब्राह्मणसाहित्य में देखा जाता है ।

[४] अह ॥

१. आचारातिक्रमण—**स्वयमह ओदनं भुङ्क्त आचार्यं सक्तून् पाययति । स्वयमह रथेन याति, उपाध्यायं पदातिं गमयति** (काशिका ८.२.१०४) । २. पूजा—**अह माणवको भुङ्क्ते** (गणरत्न०)। ३. विनियोग—**त्वमह ग्रामं गच्छ । अयमहारण्यं गच्छतु** (गणरत्न०) ।

[५] एव* ॥

१. अवधारण (ही)—**सत्यमेव जयते नाऽनृतम्** (मुण्डकोप० ३.१.६) । **कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः**(गीता० ३.२०)। **भवितव्यं भवत्येव नारिकेल-फलाम्बुवत्** (सुभाषित०) । **अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव** (पञ्च० ५.२६) । २. ज्यों ही, as soon as—**उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्** (रघु० १.८७) । ३. की तरह—**श्रीस्तवैव मेऽस्तु** (गणरत्न०), तेरे समान मेरा धन हो ।

नोट—ध्यान रहे कि 'च' से लेकर 'एव' तक का प्रयोग पाद या वाक्य के आदि में नहीं होता । **पादादौ न च वक्तव्याश्चादयः प्रायशो बुधैः**(वाग्भटालङ्कार)। इसी तरह 'खलु' 'तु' आदि के विषय में भी जानना चाहिये ।

[६] एवम्* ॥

१. इस प्रकार, इस तरह, ऐसे—**एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः** (गीता० १.४७) । **तस्मादेवं विदित्वैनं नाऽनुशोचितुमर्हसि** (गीता० २.२५)। **यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः । विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः** (माघ० २.१३) ।

[७] नूनम्* ॥

१. निश्चय से, सचमुच—**नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीस्ताः । याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः**

कथं ताः (शृङ्गार० १०) । **क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव** (कुमार० १.१२) । **नूनं न दृष्टः कविनापि तेन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी**[1] (सुभाषितसुधा०) । **तन्नूनं सा वानरी भविष्यति यतस्तस्या अनुरागतः सकलमपि दिनं तत्र गमयसि** (पञ्च० ४) । २. तर्क करना, अनुमान करना, ख़याल दौड़ाना—**पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि । तत्रायमद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि** (रामायण० ३.६३.४)। वेद में इस अव्यय के 'अब, अभी, आज' आदि अन्य अर्थ भी होते हैं ।

[८] शश्वत्* ।।

१. नित्य, हमेशा, सदा, निरन्तर—**जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि** (रघु० २.४८)। **क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति** (गीता० ९.३१) । शश्वद्भवं शाश्वतं वैरम्, **तत्र भवः** (१०८९) इत्यण् । अनित्योऽव्ययानां टिलोपः, बहिषष्टिलोपवचनाज्ज्ञापकात् । २. पुनः पुनः, बार बार—**उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोसलेश्वरम्** (रघु० ४.७०), कोसलेश्वर रघु को बार बार उपहार प्राप्त हुए परन्तु उस में गर्व उत्पन्न नहीं हुआ । ३. साथ साथ, एक साथ—**शश्वद् भुञ्जाते** (गणरत्न०) । **शश्वत्ते मुनयस्तत्र तमसेवन्त योगिनम्** (व्या० च०) ।[2]

[९] युगपत्* ।।

१. एक साथ—**युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाऽभवत्** (रामायण० ३.२५.४१) । इस अव्यय का उल्लेख पीछे स्वरादियों में नं०(११) पर हो चुका है ।

[१०] भूयस्* ।।

१. पुनः, फिर—**गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्या नरा भारतभूमिभागे । स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्** (विष्णुपुराण २.३.२४)। भूयोभूयः=पुनः पुनः, बार बार—**भूयोभूयो दर्शनेन यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति व्याप्तिं**

---

१. **अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।**
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ।। (कुमार० १.३)
कालिदास की इस सुन्दर उक्ति पर किसी कवि की सुन्दर चुटकी यथा—
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो बभाषे ।
नूनं न दृष्टः कविनापि तेन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ।। (सुभाषितसुधा०)

२. 'ह' और 'शश्वत्' के योग में भूतानद्यतन परोक्ष काल में लिँट् और लँङ् दोनों का प्रयोग हो सकता है—**हशश्वतोर्लङ् च** (३.२.११६) । यथा—इति ह अकरोत्, इति ह चकार । शश्वदकरोत्, शश्वच्चकार । यथा च भट्टिकाव्ये (६.१४३)—

दैवं न विदधे नूनं युष्मत्सुखमावयोः ।
शश्वद् बभूव तद्दुःस्थं यतो नाविति हाकरोत् ।।

गृहीत्वा (तर्कसंग्रह)। **भूयोभूयः शरान् घोरान् विससर्ज महामृधे** (रामायण० ६.४५.१४)। २. अधिक—**रामभद्र ! उच्यतां किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि** (उत्तरराम० अन्ते)। इस अव्यय का वर्णन पीछे (पृष्ठ ५३२) स्वरादियों के आकृतिगणत्व के कारण परिगृहीत शब्दों में भी आ चुका है।

[११] कूपत् ॥

१. प्रश्न या प्रशंसा में—**कूपदयं गायति** (गणरत्न०)।

नोट—इस के प्रयोग अन्वेषणीय हैं।

[१२] सूपत् ॥

१. प्रश्न या प्रशंसा में। इस का प्रयोग कहीं उपलब्ध नहीं हुआ।

[१३] कुवित् ॥

१. बहुत—**कुवित् सोमस्यापाम्** (ऋ० १०.११९.१), मैं ने बहुत सोम पिया।

नोट—इस के प्रयोग वैदिक साहित्य में बहुत हैं पर लोक में नहीं।

[१४] नेत् ॥

१. ऐसा न हो—**नेज्जिह्मायन्त्यो नरकं पताम** (ऋ० खिलपाठ, ३.२२), ऐसा न हो कि कुटिल आचरण करती हुई हम नरक में पड़ जायें। **नेच्छत्रुः प्राशं जयाति** (अथर्व० २.२७.१), ऐसा न हो कि शत्रु हमारा भक्ष्य छीन ले।

नोट—वेद में 'नेत्' का प्रयोग तो अनेक बार आया है परन्तु पदपाठकारों ने सर्वत्र 'न+इत्' ऐसा छेद ही माना है। अतः यह निपातसमुदाय है।

[१५] चेत्* ॥

१. अगर, यदि—**लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः। सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्** (नीति० ४४)। **उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्** (गीता० ३.२४)। **अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः** (गीता० ९.३०)। **किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः** (रघु० २.५७)। अथ चेत् (और अगर)—**अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि** (गीता० २.३३)।

नोट—इस अव्यय का प्रयोग वाक्य के आदि में नहीं होता।

[१६] चण् ॥

१. यदि, अगर—**इन्द्रश्च मृडयाति नः** (नागेशद्वारा उद्धृत), इन्द्र यदि हमें सुखी करे। **अयं च मरिष्यति** (काशिका ८.१.३०), यदि यह मरेगा।

नोट—इस निपात में णकार इत्संज्ञक है अतः उस का लोप हो कर 'च' ही अवशिष्ट रहता है। इस णित् 'च' निपात के योग में **निपातैर्यद्-यदि-हन्त-कुविन्नेच्चेच्चण्-कच्चिद्-यत्र-युक्तम्** (८.१.३०) सूत्र द्वारा तिङन्त को निघातस्वर का निषेध हो जाता है। समुच्चयाद्यर्थक पूर्वोक्त निरनुबन्ध 'च' से पृथक् रखने के लिये ही इसे णित् किया गया है। अतः पूर्वोक्त 'च' के योग में निघातस्वर का निषेध नहीं होता।

[१७] यत्र* ॥

१. जिस स्थान या काल में, जहां—**प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः** (नीति० ८४) । **यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि । निरस्तपादपे देश एरण्डोऽपि द्रुमायते** (हितोप० १.६९) । **यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति** (सुभाषित०) ।[1]

नोट—त्रल्प्रत्ययान्त होने से यद्यपि **तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः** (३६८) सूत्र द्वारा ही इस की अव्ययसंज्ञा हो सकती है तथापि यहां चादियों में पाठ निपातसंज्ञा के लिये है । निपातसंज्ञा का प्रयोजन **निपातैर्यद्यदिहन्त०** (८.१.३०) सूत्र से निघातस्वर का प्रतिषेध करना है ।

[१८] कच्चित्* ॥

१. इष्ट बात के पूछने में—**आयस्ते विपुलः कच्चित् कच्चिदल्पतरो व्ययः । अपात्रेषु न ते कच्चित् कोशो गच्छति राघव** (रामायण० २.१००.५४), राम भरत से पूछते हैं—हे राघव (भरत) क्या तुम्हारा खर्च तुम्हारी आमदनी से कम तो है ? क्या तेरा धन कहीं कुपात्रों पर तो ख़र्च नहीं हो रहा ? । **कच्चित् स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव । कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः सम्प्रयच्छसि** (रामायण० २.१००.७५), हे भरत ! क्या तुम स्वादिष्ट भोज्य वस्तु इच्छुक मित्रों को दिये विना अकेले तो नहीं खा जाते ? । **आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत्** (रघु० ५.५), महर्षि का त्रिविध तप कहीं विघ्नों से नष्ट तो नहीं हो रहा ?

[१९] नह ॥

१. प्रत्यारम्भ=निश्चितनिषेध—**नह भोक्ष्यसे** (गणरत्न०), तू नहीं खायेगा (न खा)। **चोदितस्यावधीरणे उपालिप्सया प्रतिषेधयुक्त आरम्भः प्रत्यारम्भः** (काशिका ८.१.३१) । २. निषेधमात्र—**नह वै तस्मिंश्च लोके दक्षिणामिच्छन्ति** (अनुपलब्धमूलं काशिकायां प्रत्युदाहरणम्) । **दिप्सन्त इद् रिपवो नह देभुः** (ऋ० १.१४७.३), शत्रु धोखा देना चाहते थे पर दे न सके ।

नोट—यह निपात 'न+ह' इन दो निपातों के समुदाय से बना है ।

[२०] हन्त* ॥

१. हर्ष प्रकट करना—**हन्त भोः शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्** (शाकुन्तल० ४)। **हन्त प्रवृत्तं संगीतकम्** (मालविका० १)। २. अनुकम्पा—**हा हन्त ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार** (सुभाषित०) । ३. वाक्यारम्भ में—**हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः** (गीता० १०.१९) । ४. विषाद में—**काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया** (सुभाषित०)। **हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः**—इत्यमरः ।

[२१] माकिर् ॥

१. मत (मत कोई)—**माकिर्नो दुरिताय धायीः** (ऋ० १.१४७.५) । **मा-**

---

१. यत्र—**अनवक्लृप्त्यमर्षगर्हाऽऽश्चर्येषु । नाऽवकल्पयामि, न मर्षये, गर्हे, आश्चर्यं वा, यत्र भवान् वृषलं याजयेत्**—इति तत्त्वबोधिनी ।

किस्तोकस्य नो रिषत (ऋ० ८.६७.११) । शाकटायन इसे सान्त मानते हैं ।

[२२] माकीम् ॥

१. मत (मत कोई)—**माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं संशारि केवटे** (ऋ० ६.५४.७) । गण में 'माकिम्' पाठ अपपाठ है ।

[२३] नकिर् ॥

१. न कोई—**सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्** (ऋ० १.५२.१३), सचमुच तेरे जैसा अन्य कोई नहीं है । **नकिर् वक्ता ना दादिति**(ऋ० ८.३२.१५), कोई यह कहने वाला नहीं है कि इन्द्र नहीं देता । **नकिस्तं घ्नन्त्यन्तितो न दूरात्** (ऋ० २.२७.१३), उसे कोई भी न तो समीप से मार सकता है और न दूर से ।

[२४] नकीम् ॥

१. न कोई—**नकीम् इन्द्रो निकर्तवे** (ऋ० ८.७८.५), कोई इन्द्र का तिरस्कार नहीं कर सकता । इस गण में उपलभ्यमान 'नकिम्' पाठ अपपाठ है ।

नोट—माकिर् आदि चारों निपात वेद में ही उपलब्ध होते हैं ।

[२५] माङ्* ॥

१. निषेध (मत)—**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्** (मनु० ८.१५) ।

नोट—अनुबन्ध ङकार का लोप हो कर 'माङ्' का 'मा' ही अवशिष्ट रहता है । ध्यान रहे कि इस का स्वरादियों में भी पाठ किया गया है । नागेशभट्ट के विचार में इस का स्वरादियों में पाठ व्यर्थ है; क्योंकि वहां पढ़ने से स्वर (अन्तोदात्त) में तो कोई अन्तर आता ही नहीं, उल्टा यहां पढ़ने के कारण लक्ष्मीवाची 'मा' शब्द की अव्ययसंज्ञा नहीं होती—जो न करनी ही अभीष्ट है । विशेष विचार सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्याओं में देखें ।

[२६] नञ्* ॥

१. नहीं—**न हि सुशिक्षितोऽपि वटुः स्वस्कन्धमारोढुं पटुः** (भुवनेश०) ।

नोट—इस का स्वरादियों में विवेचन कर चुके हैं । नागेशभट्ट के अनुसार इस का भी स्वरादियों में पाठ अप्रामाणिक है ।

[२७] यावत्* ॥

१. अवधि (पर्यन्त)—**स्तन्यत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व** (उत्तरराम० ७) । **सर्पकोटरं यावत्** (पञ्च० १) । २. यदा, जब—**यावदुत्थाय निरीक्षते तावद् हंसोऽवलोकितः** (हितोप० ३) । ३. जब तक—**यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा** (वैराग्य० ७५)। **यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः** (मोहमुद्गर० ८) । ४. तब तक, तब तक के लिये—**यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि** (शाकुन्तल० १) । **तद् यावद् गृहिणीमाहूय सङ्गीतकमनुतिष्ठामि** (शाकुन्तल० १) । ५. निश्चय ही—**यावद् भुङ्क्ते** (वह निश्चय ही खायेगा) । **यावत्पुरानिपातयोर्लट्** (३.३.४) इति लँट् ।

नोट—'जितना' अर्थ में त्रिलिङ्गी 'यावत्' शब्द का भी बहुधा प्रयोग देखा जाता है। यथा—**यावान् अर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके। तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः** (गीता० २.४६)। **यावती सम्भवेद् वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति** (मनु० ८.१५५)। **यावन्ति पशुरोमाणि** (मनु० ५.३८)।

[२८] तावत्* ॥

१. तब तक—**तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किञ्चिन्न भाषते** (हितोप० १)। २. पहले (अन्य कार्य करने से पूर्व)—**आर्य ! इतस्तावदागम्यताम्** (शाकुन्तल० १)। ३. तो—**एवं कृते तव तावत् क्लेशं विना प्राणयात्रा भविष्यति** (पञ्च० १ कथा ८)। **विग्रहस्तावदुपस्थितः** (हितोप० ३)। ४. निश्चित ही—**त्वमेव तावत् प्रथमो राजद्रोही** (मुद्रा० १)। ५. यावत् के प्रतिसम्बन्ध में—**एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य। तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति** (पञ्च० २.१०६)। **यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्** (मनु० २.२३५), माता, पिता और गुरु जब तक जीवित रहें तब तक उन की ही सेवा में रत रहे।

नोट—'उतना' अर्थ में त्रिलिङ्गी 'तावत्' शब्द का भी बहुधा प्रयोग होता है। उदाहरण ऊपर 'यावत्' के नोट में देखें।

[२९] त्वै ॥

१. विशेष—**अयं त्वै प्रकृष्यते** (गणरत्न०)। २. वितर्क—**कस्त्वा एषोऽभिगच्छति** (गणरत्न०)।

नोट—यह निपात ब्राह्मणग्रन्थों के कतिपय प्रयोगों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हुआ। शतपथ (माध्यन्दिनीय) के (१२.२.२१२) में इस का प्रयोग देखा जाता है। एवम् अन्य ब्राह्मणों में भी क्वाचित्क प्रयोग हैं।

[३०] न्वै ॥

१. वितर्क—**को न्वा एषोऽभिगच्छति** (गणरत्न०)। पादपूरणेऽपि—इति वर्धमानः।

नोट—कई लोग 'त्वै' के स्थान पर 'न्वै' का पाठ मानते हैं। परन्तु ब्राह्मणग्रन्थों में दोनों का पाठ देखा जाता है। निदर्शनार्थ 'न्वै' का पाठ माध्यन्दिनीय शतपथ में (१२.४.१.३) के स्थान पर देखें।

[३१] द्वै ॥

१. वितर्क। इस का प्रयोग वर्त्तमान उपलब्ध वैदिक वा लौकिक वाङ्मय में हमें कहीं नहीं मिला।

[३२] रै ॥

१. अनादर—**त्वं ह रै किं करिष्यसि** (गणरत्न०)। दान—**रै करोति** (गणरत्न०), दानं ददातीत्यर्थः।

नोट—इस के उदाहरण अन्वेष्टव्य हैं। वर्धमानोक्त उदाहरण ही दीक्षित ने शब्दकौस्तुभ में उद्धृत किये हैं। किसी को भी अन्य कोई उदाहरण नहीं मिला।

[३३—३७] श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा, स्वधा, वषट् ॥

इन की व्याख्या स्वरादियों में की जा चुकी है। इन का यहां पुनर्ग्रहण स्वर (आद्युदात्त) के लिये ही समझना चाहिये।

[३८] तुम् ॥

१. तूँ तूँ कह कर निरादर करना—**गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। श्मशाने जायते घोरे काकगृध्रोपसेविते** (सुप्रसिद्ध)।

नोट—यहां 'तुम्' से उपर्युक्त उदाहरणगत 'तुम्' के ग्रहण में हमारा मन सन्देह करता है। किसी कोषकार ने इस का उल्लेख नहीं किया।

[३९] तथाहि* ॥

१. क्योंकि, कारण कि, इसीलिये—**तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना। तथाहि सर्वे तस्यासन् परार्थैकफला गुणाः** (रघु० १.२९)। २. इस तरह, इस प्रकार—**तथाहि रामो भरतेन ताम्यता प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः। न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान् मतिं पितुस्तद्वचने व्यवस्थितः** (रामायण० २.१०६.३३)।

नोट—यह निपात 'तथा' और 'हि' इन दो निपातों को मिला कर बना है।

[४०] खलु* ॥

१. शैलीवशात् दबाव (Stress) डालते हुए वाक्यालंकार में—**न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम** (शाकुन्तल० ४)। **न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति** (सुभाषित०)। २. अनुनय करना—**न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्। मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः** (शाकुन्तल० १)। **न खलु न खलु मुग्धे साहसं कार्यमेतत्** (नागानन्द० ३)। ३. निश्चय ही, निस्सन्देह, सचमुच—**अनुत्सेकः खलु विक्रमाऽलङ्कारः** (विक्रमो० १), निश्चय ही अभिमानशून्यता वीरता का अलङ्कार है। **न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान्** (रघु० ३.५१), निश्चय ही रघु को जीते विना आप कृतकृत्य नहीं हो सकते। **दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः** (शाकुन्तल० १.१६), निस्सन्देह वन की बेलों ने बाग की बेलों को मात दे दी। **पुत्रादपि प्रियतरं खलु तेन दानम्** (पञ्च० २.५५), सचमुच दान पुत्र से भी अधिक प्रिय होता है। ४. प्रश्न पूछने में—**न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः** (विक्रमो० ३), तो क्या गुरु उस पर क्रुद्ध नहीं हुए? **न खलु विदितास्ते तत्र निवसन्तश्चाणक्यहतकेन** (मुद्रा० २), तो क्या उन्हें वहां रहते हुए दुष्ट चाणक्य ने नहीं जाना? ५. निषेध में—**पीत्वा खलु** (मत पिओ), यहां **अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** (८७८) सूत्र से क्त्वा प्रत्यय हो जाता है। **निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्** (माघ० २.७०), लेख द्वारा अर्थ के जान लेने पर फिर मौखिक अभिप्राय समझाना व्यर्थ है। ६. हेत्वर्थ में (कारण कि, क्योंकि)—**न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः** (कुमार० ४.५), मैं विदीर्ण नहीं हो रही कारण कि स्त्रियां कठोर होती हैं।

नोट—**न पादादौ खल्वादयः** (वामनसूत्र ५.१.५) यह सूत्र निषेधार्थक से भिन्न 'खलु' के लिये है।

[४१] किल* ।।

१. वार्ता अर्थात् ऐतिह्य बात कहने में—**बभूव योगी किल कार्त्तवीर्यः** (रघु० ६.३८), सुनते हैं कि कार्तवीर्य नाम वाला एक ब्रह्मवेत्ता था। **जघान कंसं किल वासुदेवः** (महाभाष्ये ३.२.१११), कहते हैं कि वासुदेव ने कंस को मार डाला। २. निश्चय से—**इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः** (शाकुन्तल० १.१८), निश्चय से यह शरीर स्वाभाविक सुन्दर है। **स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायम्** (ऋ० १.४७.१) निश्चय ही यह सोम स्वादु है और मधुर है। ३. अलीक अर्थात् अवास्तविक बात कहने में—**प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष** (रघु० २.२७), सिंह ने बलपूर्वक उस नन्दिनी को दबोचने का बहाना किया। **अयि कठोर यशः किल ते प्रियम्** (उत्तरराम० ३.२७), ऐ निर्दय ! तुझे यश प्यारा है यह झूठ है। **द्राघीयसा वयोऽतीतः परिक्लान्तः किलाध्वना** (किरात० ११.२), वह बूढ़ा कपटरूप से दीर्घ मार्ग के कारण थका हुआ प्रतीत हो रहा था। ४. सम्भावना में—**पार्थः किल विजेष्यते कुरून्** (गणरत्न०), आशा है कि अर्जुन कौरवों को जीतेगा। **गुरून् किलातिशेते शिष्यः** (व्या० च०), सम्भावना है कि शिष्य गुरुओं से बढ़ जायेगा। ५. अरुचि में—**एवं किल केचिद्वदन्ति** (गणरत्न०), [हम तो नहीं मानते] परन्तु कुछ लोग ऐसा कहते हैं। ६. निरादर में—**त्वं किल योत्स्यसे** (गणरत्न०), तू और फिर युद्ध करेगा अर्थात् युद्ध करना तेरे बूते से बाहर है। ७. हेतु अर्थ में (क्योंकि)—**क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः** (रघु० २.५३), क्योंकि घाव से बचाता है इस कारण उग्र क्षत्रशब्द तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।

[४२] अथो ।।

इस के भी प्रायः 'अथ' की तरह अर्थ होते हैं। १. समुच्चय ('च' के अर्थ) में—**स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्। विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः**(मनु० २.४०)। २. अनन्तर—**अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्त्तिनीं विवर्त्तिताऽनञ्जननेत्रमैक्षत** (कुमार० ५.५१), तब अञ्जनशून्य नेत्रों वाली पास खड़ी सखी को पार्वती ने देखा।

नोट—'अथो' निपात (५३) है अतः इस के आगे स्वर वर्ण आने पर **ओत्** (५६) सूत्र द्वारा प्रगृह्यसंज्ञा हो जाती है। तब प्रकृतिभाव होने से सन्धि नहीं होती। यथा—अनेन व्याकरणमधीतमथो एनं छन्दोऽध्यापयेति (सि० कौ०)।

[४३] अथ* ।।

इस का विवेचन स्वरादियों में हो चुका है। स्वरादियों में इस के पढ़ने का प्रयोजन यह है कि मङ्गलरूपसत्त्ववाचक 'अथ' शब्द की भी अव्ययसंज्ञा सिद्ध हो जाये। यथा नैषध० (१५.६) में—

उदस्थ कुम्भीरथ शातकुम्भजाश्चतुष्कचारुत्विषि वेदिकोदरे।
यथाकुलाचारमथावनीन्द्रजां पुरन्ध्रिवर्गः स्नपयाम्बभूव ताम्।।

यहां 'अथ स्नपयाम्बभूव' का 'मङ्गलं स्नपनं चकार' ऐसा अर्थ है। निपातों में पढ़ा

गया यह 'अथ' अन्य अर्थ का वाचक होता हुआ केवल स्वरूपमात्र से मङ्गल का द्योतन कराता है। यथा —**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** (वेदान्तदर्शन १.१.१), यहां आनन्तर्य अर्थ का वाचक 'अथ' शब्दस्वरूप अर्थात् ध्वनिमात्र से माङ्गलिक (मङ्गलद्योतक) है। कहा भी है—

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ॥

[४४] सुष्ठु* ॥

इस का विवेचन स्वरादियों के आकृतिगणत्वेन परिगणित संग्रह में कर चुके हैं। यहां निपातों में इस का पुनर्ग्रहण **निपाता आद्युदात्ताः** (फिट्सूत्र ८०) द्वारा आद्युदात्तस्वर के लिये ही किया गया है। स्वरादियों में प्रायः **फिषोऽन्त उदात्तः** (फिट्सूत्र १) से अन्तोदात्त स्वर होता है। जिन में दोनों स्वर अभीष्ट होते हैं उन अनेकाचों का दोनों जगह पाठ किया जाता है। ध्यान रहे कि एकाचों में स्वरसंबंधी कोई अन्तर नहीं होता।

[४५] स्म* ॥

१. भूतकाल में—**भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म** (पञ्च० १)। **क्रीणन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि** (माघ० १८.१५)। इस के योग में भूतकाल में भी लँट् का प्रयोग होता है—देखें **लँट् स्मे** (७६३) तथा **अपरोक्षे च** (३.२.११९)। २. शब्द सौन्दर्य बढ़ाने के लिये प्रायः 'मा' (मत) के साथ—**भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः** (शाकुन्तल० ४.१८)। **मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम्** (हितोप० २.७)। ३. पादपूर्त्ति के लिये—**तु हि च स्म ह वै पादपूरणे**—इत्यमरः।

[४६] आदह ॥

१. हिंसा— **आदहारीन् पुरन्दर** (गणरत्न०)। २. उपक्रम—**आदह भक्तस्य भोजनाय** (गणरत्न०)। ३. कुत्सन—**कुर्वादह यदि करिष्यसि** (गणरत्न०)।

नोट—इस अव्यय का हमें कहीं प्रयोग नहीं मिल सका। भट्टोजिदीक्षित को भी इस का प्रयोग उपलब्ध नहीं हुआ, यह उन्होंने शब्दकौस्तुभ में स्पष्ट स्वीकार किया है।

उपसर्ग-विभक्ति-स्वर-प्रतिरूपकाश्च (गणसूत्रम्) ॥

अर्थः—उपसर्गप्रतिरूपक, विभक्तिप्रतिरूपक तथा स्वरप्रतिरूपक भी चादियों में पढ़ने चाहियें। जो वस्तुतः उपसर्ग तो न हों पर आकृत्या उपसर्ग के समान प्रतीत हों उन्हें 'उपसर्गप्रतिरूपक' कहते हैं। इसी प्रकार विभक्ति अर्थात् विभक्त्यन्त के समान प्रतीत होने वाले 'विभक्तिप्रतिरूपक' तथा स्वर अर्थात् अच् के समान प्रतीत होने वाले 'स्वरप्रतिरूपक' कहलाते हैं। उपसर्गप्रतिरूपक यथा—

[४७] अवदत्तम् ॥

१. दिया जा चुका। किमन्नम् अवदत्तं त्वया ?

नोट—अव+दा+क्त=अव+दद्+त=अवदत्तम् । यहां 'अव' उपसर्ग नहीं अपितु उपसर्गप्रतिरूपक (उपसर्ग के सदृश दिखाई देने वाला) निपात है । अतः उपसर्ग न होने से इस से परे 'दा' धातु के आकार को **अच उपसर्गात्तः** (७.४.४७)[1] सूत्रद्वारा त् आदेश नहीं होता । **दो दद् घोः** (८२७)[2] द्वारा सम्पूर्ण 'दा' के स्थान पर दद् आदेश ही होता है । ध्यान रहे कि 'अव' उपसर्ग के योग में 'दा' के आकार को त् आदेश करने पर—अव+द् त्+क्त=अवत्तम् रूप बनता है । इसी प्रकार—

अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तञ्चादिकर्मणि ।
सुदत्तमनुदत्तञ्च निदत्तमिति चेष्यते ।। (महाभाष्ये)

इन में अनु, प्र, सु, वि और नि को भी उपसर्गप्रतिरूपक निपात समझना चाहिये ।

विभक्तिप्रतिरूपक यथा—

[४८] अहंयुः ।।

१. अहङ्कारवान्—**स शुश्रुवांस्तद्वचनं मुमोह राजाऽसहिष्णुः सुतविप्रयोगम् । अहंयुनाऽथ क्षितिपः शुभंयुरूचे वचस्तापसकुञ्जरेण** (भट्टि० १.२०), महाराज दशरथ विश्वामित्र के उन वचनों को सुन कर पुत्रवियोग को सहन न करते हुए मोह को प्राप्त हो गए । तब अहंकारवान् तापसश्रेष्ठ विश्वामित्र ने अपना कल्याण चाहने वाले राजा को यह वचन कहा ।

नोट—'अहम्' यह अहङ्कारवाचक विभक्तिप्रतिरूपक निपात है । 'अस्मद्' शब्द के प्रथमैकवचनान्त के समान प्रतीत होता है, परन्तु है यह उस से नितान्त ही भिन्न । इस निपात (अव्यय) से मत्वर्थ में **अहंशुभमोर्युस्** (११९२) सूत्रद्वारा युस् प्रत्यय हो जाता है । अहम् (अहङ्कारः) अस्त्यस्येति—अहंयुः । 'अहंयु' शब्द उकारान्त त्रिलिङ्गी हो जाता है । ध्यान रहे कि इसे सकारान्त समझना भूल है । प्रत्यय का सित्त्व पदसंज्ञार्थ है । अतः भसंज्ञा न हो कर पदसंज्ञा के कारण **मोऽनुस्वारः** (७७) से मकार को अनुस्वार हो जाता है । 'अहंयु' शब्द में यदि 'अस्मद्' शब्द होता तो **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** (७.२.९८) द्वारा मपर्यन्त मद् आदेश होकर 'मद्युः' ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता ।

इसी प्रकार 'शुभम्' (सुख, कल्याण) इस विभक्तिप्रतिरूपक निपात से भी युस् प्रत्यय हो कर—शुभम् अस्त्यस्येति 'शुभंयुः' निष्पन्न होता है । इस का साहित्यगत प्रयोग भी ऊपर के श्लोक में आ चुका है । **अहंकारवानहंयुः शुभंयुस्तु शुभान्वितः**—इत्यमरः ।

चिरेण, चिराय, चिरात्, चिरे, चिरस्य—इत्यादि अव्ययों को भी कई लोग

---

१. **अच उपसर्गात्तः** (७.४.४७)—अजन्त उपसर्ग से परे घुसंज्ञक दा धातु के आकार को 'त्' आदेश हो जाता है तकारादि कित् प्रत्यय परे हो तो ।

२. **दो दद् घोः** (८२७)—घुसंज्ञक दा धातु को 'दद्' यह सर्वादेश हो जाता है तकारादि कित् प्रत्यय परे हो तो ।

स्वरादियों में न पढ़ कर चादियों में ही पढ़ते हैं। ये सब विभक्तिप्रतिरूपक निपात या अव्यय हैं। विभक्ति न होने पर भी इन में विभक्ति का सा भ्रम होता है। सुब्विभक्त्यन्त का भ्रम होने से इन को **सुबन्तप्रतिरूपक** निपात भी कहते हैं। अब तिङन्तप्रतिरूपक निपात का उदाहरण देते हैं—

[४६] अस्तिक्षीरा ।।

अस्तिक्षीरा = क्षीरवती (गाय आदि)। अस्ति (विद्यमानम्) क्षीरं (दुग्धम्) यस्याः सा—अस्तिक्षीरा। बहुव्रीहिसमासः। यहां 'अस्ति' यह विद्यमानार्थक तिङन्त-प्रतिरूपक निपात (अव्यय) है। यदि यह वस्तुतः तिङन्त होता तो इस का सुबन्त क्षीरशब्द के साथ बहुव्रीहिसमास न हो सकता [देखें—**अनेकमन्यपदार्थे** (६३५)]। किसी घटना, कथा या वर्णन को आरम्भ करने में भी 'अस्ति' निपात का प्रयोग देखा जाता है। यथा—**अस्ति पूर्वमहं व्योमचारी विद्याधरोऽभवम्** (कथासरित्० २२.५६)। इसी निपात से अस्तिकायः, अस्तित्व आदि शब्द बनते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि 'अस्ति' का पीछे स्वरादियों में पाठ आ चुका है अतः इसे तिङन्तप्रतिरूपक के रूप में उदाहृत करना बेकार है[1]। इस के स्थान पर अस्मि (मैं) का उदाहरण यहां के लिये उपयुक्त है। 'अस्मि' के उदाहरण यथा—**त्वामस्मि वच्मि विदुषां समवायोऽत्र तिष्ठति** (साहित्य० ४), अस्मि = अहं वच्मि इत्यर्थः। **दासे कृतागसि भवत्युचितः प्रभूणां पादप्रहार इति सुन्दरि नास्मि दूये** (साहित्य० १०), हे सुन्दरि! अपराधी सेवक पर प्रभु पादप्रहार करें यह उचित ही है अतः मैं दुःखी नहीं हो रहा हूं। **अन्यत्र यूयं पुष्पावचायं कुरुध्वमत्रास्मि करोमि सख्यः** (काव्यप्र० ३.२०), हे सखियो! आप दूसरी जगह फूल चुनो मैं यहां चुनता हूं। **नृमांसमस्मि विक्रीणे गृह्यतामित्युवाच सः** (कथासरित्०), मैं नरमांस बेच रहा हूं लीजिये ऐसा उस ने कहा। योगशास्त्र में प्रसिद्ध अस्मिता शब्द भी इसी निपात से निष्पन्न होता है। इसी प्रकार—'अस्तु' आदि अन्य भी तिङन्तप्रतिरूपक निपात समझ लेने चाहियें।

---

१. उन का यह भी कहना है कि 'अस्ति' शब्द का अर्थ 'धन' भी होता है इस से अस्तिमान् (धनवान्) शब्द निष्पन्न होता है। अतः सत्त्ववाचक होने से स्वरादियों में ही इस का पाठ उचित है। क्योंकि यहां **चादयोऽसत्त्वे** (५३) में 'असत्त्वे' कथन के कारण धनवाचक 'अस्ति' शब्द की निपातसंज्ञा न हो सकेगी। परन्तु अन्य लोग उन के इस विचार से सहमत नहीं उन का कथन है कि (५.२.६४) सूत्रस्थ महाभाष्य के अवलोकन से यह सुतरां प्रमाणित होता है कि इस का स्वरादियों में पाठ अप्रामाणिक है चादियों में ही पाठ उचित है। अस्तिमान् का वास्तविक अर्थ 'सत्ता वाला' है। लोक में सत्ता प्रायः धनमूलक मानी जाती है अतः इस का अर्थ 'धनवान्' भी हो गया है।

स्वरप्रतिरूपक यथा—

[५०] अ ॥

१. सम्बोधन—अ अनन्त । २. आक्षेप (निन्दा) में—**अपचसि जाल्म** (सि० कौ०), हे दुष्ट ! तुम गर्हितरीत्या पकाते हो । अनेक वैयाकरण इस अर्थ में नञ् के नकार का **नञो नलोपस्तिङि क्षेपे** (वा०) वार्तिक द्वारा लोप हुआ मानते हैं, स्वतन्त्रतया **'अ'** निपात का प्रयोग नहीं ।

[५१] आ ॥

१. पूर्व प्रकान्त वाक्य के अन्यथा करने में—**आ एवं नु मन्यसे** (काशिका), अब तूं ऐसा मानता है, अर्थात् पहले तूं ऐसा नहीं मानता था अब मानने लगा है । २. स्मरण में—**आ एवं किल तत्** (काशिका), ओह ! वह ऐसा ही है । इस का विवेचन पीछे **निपात एकाजनाङ्** (५५) सूत्र पर कर चुके हैं ।

[५२] इ ॥

१. सम्बोधन—**इ इन्द्रं पश्य** (काशिका), ऐ ! इन्द्र को देखो । २. विस्मय—**इ इन्द्रः** (सि० कौ०), ओह ! यह इन्द्र है ।

[५३] ई ॥

१. सम्बोधन—**ई ईश !** । **ई ईदृशः संसारः** (गणरत्न०) ।

[५४] उ ॥

१. सम्बोधन—**उ उत्तिष्ठ** (गणरत्न०) । २. वितर्क—**उ उमेशः** (सि० कौ०), जान पड़ता है कि उमेश है ।

[५५—५९] ऊ । ए । ऐ । ओ । औ ॥[1]

१. सम्बोधन—**ऊ ऊषरे बीजं वपति । ए इतो भव । ऐ वाचं देहि । ओ श्रावय** (गणरत्न०) । **औ महात्मन् !** ।

नोट—इन स्वरप्रतिरूपक निपातों की अच् परे होने पर **निपात एकाजनाङ्** (५५) सूत्रद्वारा प्रगृह्यसंज्ञा हो कर प्रकृतिभाव हो जाता है, अतः स्वरसन्धि नहीं होती ।

[६०] पशु ॥

१. ठीक तरह से—**लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः** (ऋ० ३.५३.२३) ।

[६१] शुकम् ॥

१. शीघ्र—**शुकं गच्छति** (गणरत्न०), शीघ्र जाता है ।

नोट—इस के प्रयोग अन्वेषणीय हैं । कुछ कोषकार यहां 'शकम्' पाठ **मानते हैं** ।

---

१. **स्वरादिरिति सम्बोधन-भर्त्सनाऽनुकम्पा-पादपूरण-प्रतिषेधेषु यथासम्भवं भवति**—इति गणरत्नमहोदधौ वर्धमानः ।

[६२] यथाकथाच ।।

१. अनादर—**यथाकथाच दीयते** (गणरत्न०) । **यथाकथाच दक्षिणा** (गणरत्न०) । **यथाकथाच दीयते क्रियते वा याथाकथाचम्** (व्या० च०) । 'याथाकथाचम्' तद्धितान्त प्रयोग है ।

नोट—यह निपातसमुदाय है । इस के प्रयोग अन्वेष्टव्य हैं ।

[६३-६४] पाट् । प्याट् ।।

१. सम्बोधन—पाट् पान्थ, प्याट् पावक (हेमचन्द्र)[1] ।

[६५] अङ्ग* ।।

१. सम्बोधन—**अङ्ग कच्चित्कुशली तातः** (कादम्बरी०) । **प्रभुरपि जनकानामङ्ग भो याचकस्ते** (महावीर० ३.५) । **अङ्गाधीष्व भक्तं ते दास्यामि** (काशिका ८.२.९६), अरे भाई पढ़ो मैं तुझे भात दूंगा । २. किम्+अङ्ग=किमङ्ग=कितना अधिक—**तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां किमङ्ग वाग्हस्तवता नरेण** (पञ्च० १.७१) । ३. बात ही क्या—**शक्तिरस्ति कस्यचिद्विदेहराजस्य च्छायामप्यवस्कन्दयितुं किमङ्ग जामातरम्** (महावीर० ३) ।

नोट—कोषकारों ने इस निपात के ये अर्थ गिनाये हैं—**क्षिप्रे च पुनरर्थे च सङ्गमासूययोस्तथा । हर्षे सम्बोधने चैव ह्यङ्गशब्दः प्रयुज्यते ।**

[६६] है ।।

१. सम्बोधन—**है राम पाहि माम् ।**

[६७] हे* ।।

१. सम्बोधन—**हे कृष्ण हे यादव हे सखेति** (गीता० ११.४१) ।

[६८] भोस्* ।।

१. सम्बोधन—**भोस्तपोधनाः! चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि** (शाकुन्तल० ५) । **भो भोः पण्डिताः श्रूयताम्** (हितोप० प्रस्तावना) ।[2]

[६९] अये* ।।

१. सम्बोधन—**अये गौरीनाथ ! त्रिपुरहर ! शम्भो ! त्रिनयन !** (वैराग्य० ८७) । २. आश्चर्य—**अये कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः** (उत्तरराम० १) ।

---

१. **सम्बोधनेऽङ्ग भोः प्याट् पाट् हे है हंहो अरेऽयि रे**—इत्यभिधानचिन्तामणिः ।

२. कुछ वैयाकरण 'भो' इस प्रकार का ओदन्त निपात भी मानते हैं । **अहो आहो हो उताहो च नो अंहो अथो इमे । भो प्रयुक्ताश्च ओदन्ता अष्टावित्यागमे स्मृताः** (शाकटायन लघुवृत्ति पृ० २६ बनारससंस्करण) । **भो सुन्दरि** (जैनेन्द्रमहावृत्ति ५.४.३) । साहित्य में इस के प्रयोग अन्वेष्टव्य हैं [पाणिनीयतन्त्र में इस प्रकार की मान्यता हमारे दृग्गोचर कहीं नहीं हुई] ।

[७०] घ ।

१. पादपूर्ति; २. हिंसा; ३. प्रातिलोम्य । **घ हिनस्ति मृगं व्याधः** (प्रक्रिया० प्रसाद) ।

नोट—इस निपात का प्रयोग हमें कहीं नहीं मिला । अथर्ववेद में 'घ' का पाठ तीन स्थानों पर आया है परन्तु वहां सर्वत्र अव्यय का प्रयोग न हो कर धातु का रूप प्रयुक्त किया गया है ।

[७१] विषु ॥

१. साम्य, समता । विषु (साम्यम्) अस्त्यस्येति विषुवान् । समरात्रिन्दिवः कालः (Equinox) इत्यर्थः । विषुवद् वृत्तम्=भूमध्यरेखा=Equator । २. चहुँ ओर, नाना दिशाओं में—विषु (सर्वासु दिक्षु) अञ्चतीति विष्वक् । **छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैर्विश्वग्विलुप्तच्छदः** (पञ्च० २.२) । **समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि**—इत्यमरः ।

[७२] एकपदे* ॥

१. एकदम, एकसाथ—**निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव** (माघ० २.९५) । २. अकस्मात्, अचानक—**अयमेकपदे तया वियोगः प्रियया चोपनतः सुदुःसहो मे** (विक्रमो० ४.३) । **कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे** (रघु० ८.४८) ।

[७३] युत् ॥

१. कुत्सा, गर्हा । उदाहरणम्मृग्यम् ।

नोट—शब्दकौस्तुभ, प्रौढमनोरमा, व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि आदि ग्रन्थों में यहां 'पुत्' पाठ दे कर—**पुत् कुत्सितमवयवं छादयतीति पुच्छम्**—ऐसा उदाहरण भी लिखा हुआ मिलता है ।

[७४] आतस् ॥

१. इतोऽपि=इस कारण से भी—**आतश्च सूत्रत एव** (महाभाष्य० पस्पशाह्निक) । **आतस्त्वां प्रति कोपनस्य तरलः शापोदकं दक्षिणः** (व्या० सि० सु०) ।

आकृतिगणोऽयम् ॥

यह चादि भी आकृतिगण है । प्रयोग में देखे जाने वाले कुछ अन्य अव्यय यथा—

(१) अयि*=१. कोमल सम्बोधन । **अयि कठोर यशः किल ते प्रियम्** (उत्तरराम० ३.२७) । **अयि विद्युत् प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि** (मृच्छ० ५.३२) । **अयि मातर्देवयजनसम्भवे देवि सीते** (उत्तरराम० ४) । २. पूछने में—**अयि जानीषे रेभिलस्य सार्थवाहस्योद्वसितम् ?** (मृच्छ० ४) । **अयि जीवितनाथ जीवसि** (कुमार० ४.३) ।

(२) रे*=सम्बोधन । **रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयताम्**

(नीति०)। **रे पान्थ! विह्वलमना न मनागपि स्याः** (भामिनी० १.३६)। **दिने दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकम्** (नैषध० १.६०)।

(३) अरे=अपने से निकृष्टों के सम्बोधन में—**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः** (बृ० उ० २.५), अरी! आत्मा ही देखने योग्य, सुनने योग्य तथा मनन करने योग्य है। यहां याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयी को सम्बोधित कर रहे हैं।

(४) अरेरे=क्रोध या निरादर से सम्बोधन करने में—**अरेरे राधागर्भभारभूत सूतापसद** (वेणी० ३)।

(५) भगोस्=देवों या मान्यों के सम्बोधन में—**भगो नमस्ते** (भगवन्! आप को नमस्कार हो)। **सा होवाच मैत्रेयी यन्नु मे इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्यामिति** (बृ० उ० २.४.२), वह मैत्रेयी बोली—हे भगवन्! यदि यह सम्पूर्ण पृथ्वी धन से परिपूर्ण हुई मेरी हो जाये तो भी मैं कैसे उस से मुक्त हो जाऊंगी?

(६) अघोस्=निकृष्ट पापी या दुष्ट को सम्बोधित करने में—**अघो याहि** (रे दुष्ट! तू जा)।

(७) हंहो=प्रायः मध्यमदर्जे के जनों को सम्बोधित करने में—**हंहो ब्राह्मण! मा कुप्य** (मुद्रा० १)। **हंहो तिष्ठ सखे! विवेक! बहुभिः प्राप्तोऽसि पुण्यैर्मया** (हेमचन्द्र), हे मित्र विवेक! तू मेरे पास रह जा, मैं ने तुम्हें बड़े पुण्यों से पाया है।

(८) हा*=१. दुःख, शोक या खेद प्रकट करने में—**हा कष्टं ललिता लवङ्गलतिका दावाग्निना दह्यते** (भामिनी० १.५५)। **हा पितः! क्वासि हे सुभ्रु!** (भट्टि० ६.११)। **हाहा तथापि विषया न परित्यजन्ति** (वैराग्य० १५)। **हाहा देवि! स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः** (उत्तरराम० ३. ३८)। २. आश्चर्य प्रकट करने में—**हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौशल्या** (उत्तरराम० ४)।

(९) अहह=१. खेदातिशय प्रकट करने में—**तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे, न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः** (नीति० २८), पिता हिमालय के क्लेशविवश होने पर उस के पुत्र मैनाक का समुद्र में डुबकी लगाना अच्छा न था। २. आश्चर्य या अद्भुत अर्थ में—**अहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः** (नीति० २७), आश्चर्य है कि महापुरुषों के चरित का माहात्म्य सीमारहित होता है।

(१०) अहो*=१. महत्त्व या आश्चर्य प्रकट करने में—**अहो मधुरमासां दर्शनम्** (शाकुन्तल० १)। **अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता** (किरात० १.२३)। **अहो कामी स्वतां पश्यति** (शाकुन्तल० २.२)। **अहो रूपमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः। अहो दीप्तिरहो कान्तिरहो शीलमहो बलम्। अहो शक्तिरहो भक्तिरहो प्रज्ञा हनूमतः** (रामचरित० १.५२)। २. खेद या दुःख प्रकट करने में—**अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः** (शाकुन्तल० ५)। **विधिरहो बलवानिति मे मतिः** (नीति० ८५)।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् (गीता० १.४४)। ३. सम्बोधन—अहो हिरण्यक ! श्लाघ्योऽसि। अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीमिच्छामि (हितोप०)।

(११) सह*=के साथ। शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते (कुमार० ४.३३)। सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी (चाणक्य०)।

(१२) जातु*=सर्वथा, बिलकुल, कभी भी—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते (मनु० २.९४)। अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति (भामिनी० १.७२)।

(१३) इत्=ही—अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व (ऋ० १०.३४.१३), जूआ मत खेल, खेती ही कर। अर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते (निरुक्त)। लौकिक-साहित्य में इस का स्थान प्रायः 'एव' ने ले लिया है।

(१४) नो*=नहीं, नञ् के अर्थ में। भार्या साधु सुवंशजापि भजते नो यान्ति मित्राणि च, न्यायारोपितविक्रमाण्यपि नृणां येषां नहि स्याद्धनम् (पञ्च० ५.२४)। पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजात्यादिभिः (अमरु० ४३)। विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः। याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव (भामिनी० १.६४)।

(१५) नोचेत्*=यदि नहीं तो—नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ (वैराग्य० ६६)। धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते, नोचेद् अनूत्पद्यन्ते न धर्महानिर्भवति (आपस्त० ध० १.२०.३.४)।[1]

(१६) नहि*=नहीं, निश्चित निषेध। नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया (हितोप० १.८६)। अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी (माघ० १६.२५)। नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली (रघु० ६.६९)। कियन्मात्रं जलं विप्र ! जानुदघ्नं नराधिप। तथापीयमवस्था ते नहि सर्वे भवादृशाः (सुभाषितरत्न०)।

(१७) उत*=१. अथवा, या, विकल्प—वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव (वीरचरित०)। किमिदं गुरुभिरुपदिष्टमुत धर्मशास्त्रेषु पठितमुत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियम् (कादम्बरी०)। तत्किमयमातपदोषः स्यादुत यथा मे मनसि वर्त्तते (शाकुन्तल० ३)। एकमेव वरं पुंसामुत राज्यमुताश्रमः (गणरत्न०)। २. भी, 'अपि' के अर्थ में—प्रियं

---

१. इन अव्ययों या निपातों में अनेक शब्द दो अव्ययों के संयोग से बने हैं। यथा—नोचेत्, नहि, प्रत्युत, यद्यपि, अतीव, किमपि, किञ्च आदि। क्या इन को एक ही अव्यय मानें या दो का समुदाय ? इस विषय में हम कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। कारण कि पाणिनिद्वारा अव्ययों के निरूपण का मूल आधार स्वरव्यवस्था थी जो उस समय लोक और वेद दोनों में समानरूप से व्यापृत थी। अद्यत्वे स्वरव्यवस्था लोक से सर्वथा उठ चुकी है अतः इन लौकिक अव्ययों में कौन संयुक्त और कौन एक अव्यय है—यह निर्देश करना एक दुष्कर कार्य है।

मा कृणु देवेषूत शूद्र उतार्ये (अथर्व० १९.६२.१), मुझे देवताओं का प्यारा बना, शूद्र और आर्य का भी। ३. श्लोक के अन्त में पादपूर्त्यर्थ—**धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत** (गीता० १.४०)।

(१८) किम्*=१. क्यों, क्या। **किं बद्धः सरितां नाथः क्लेशिताः किं वनौकसः। त्यक्तव्या यदि वैदेही किं हतो दशकन्धरः** (रामचरित० ४० ६३), यदि मुझे सीता का त्याग ही करना था तो समुद्र को क्यों बांधा, वनवासी वानरों को क्यों क्लेश दिया, रावण को क्यों मारा ? । **न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः** (वैराग्य० ८९)। २. कुत्सा, निन्दा अर्थ में—**स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्** (किरात० १.५), वह कुत्सित मित्र है जो राजा को ठीक सलाह नहीं देता।

(१९) किमुत*=कहना ही क्या। **ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः** (रघु० २.६२), ऋषि के प्रभाव से मुझ पर यम भी प्रहार नहीं कर सकता दूसरे हिंसक जीवों का तो कहना ही क्या ?

(२०) किमु*=१. कहना ही क्या। **यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्** (हितोप० प्रस्तावना)। २. अथवा क्या—**किमु विषविसर्पः किमु मदः** (उत्तरराम० १.३५)। ३. क्या—**प्रियसुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते** (आप्टे०)।

(२१) किमिति*=किस कारण से, किस लिये—**किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्** (कुमार० ५.४४)। **तत् किमित्युदासते भरताः** (मालती० १), तो नटवर्ग क्यों उदास है ?

(२२) किमिव*=क्या (इव वाक्यालंकार में है)—**किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाऽऽकृतीनाम्** (शाकुन्तल० १.१८)। **स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिव न हि रम्यं मृगदृशः** (शृङ्गार० ६)।

(२३) किमपि*=१. कुछ अनिर्वाच्य—**किमपि कमनीयं वपुरिदम्** (शाकुन्तल० ३.७), यह शरीर इतना सुन्दर है कि बखान नहीं किया जा सकता। २. कुछ—**जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः** (मालती० १.८)।

(२४) प्रत्युत*=के विपरीत, उल्टा—**कृतमपि महोपकारं पय इव पीत्वा निरातङ्कः। प्रत्युत हन्तुं यतते काकोदरसोदरः खलो जगति** (भामिनी० १.७५), किये हुए महोपकार को दूध की तरह पी कर निःशङ्क हुआ दुर्जन सांप की तरह उल्टा मारने को दौड़ता है। **विषादे कर्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम्** (वैराग्य० ५८), दुःख प्रकट करना चाहिये पर मूढ लोग इस के विपरीत प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

(२५) अकाण्डे*=अचिन्तित रूप से, अचानक—**दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा** (शाकुन्तल० २.१३), कुछ कदम चल कर वह सुन्दरी कुशाङ्कुर से पांव छिल गया है इस का बहाना कर अचानक रुक गई।

(२६-२७) चित्*, चन*। ये दोनों निपात प्रायः किसी भी विभक्त्यन्त या

प्रत्ययान्त किम् शब्द के अन्त में जुड़ कर असाकल्य या अनिश्चितता को प्रकट करते हैं। यथा—कश्चित् (कोई), काचित्, किञ्चित्, केनचित्, कस्मैचित्, कस्मिँश्चित्, क्वचित्, कुत्रचित्, कथञ्चित्, कदाचित्, कुतश्चित्। इसी प्रकार—कश्चन, काचन, केचन, कदाचन आदि। उदाहरण यथा—**न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः। व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा** (हितोप० १.७१)। **नाऽपृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्** (मनु० २.११०)। **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति**(देवीक्षमा० १)। **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**(गीता० २.४७)। **यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्** (नीति० ७)।

(२८) अमा=**अमा सह समीपे च** इत्यमरः। साथ या समीप—अमा (सह) वसतश्चन्द्रार्कौ अस्यां साऽमावस्या। अमा (राज्ञः समीपे) वर्तत इत्यमात्यः। वेद में इस के गृह आदि अन्य अर्थ भी होते हैं।

(२९) आहो*=अथवा, या—**वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद् व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्। अत्यन्तमेव सदृशेक्षणवल्लभाभिराहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः**(शाकुन्तल० १.२४)। **दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः**(शाकुन्तल० ५.२९)।

(३०) उताहो*=अथवा, या—**उताहो हतवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीक्षितः** (रामायण० ७.३१.४)। **कच्चित् त्वमसि मानुषी उताहो सुराङ्गना** (व्या० च०)।

(३१) स्वित्=वितर्क में—**दनुजः स्विदयं क्षपाचरो वा वनजे नेति बलं बतास्ति सत्त्वे** (किरात० १३.८), क्या यह दानव हो सकता है या राक्षस? क्योंकि जंगली प्राणी में तो इतना बल नहीं हो सकता। **तपोबलेनैष विधाय भूयसीस्तनूरदृश्याः स्विदिषून् निरस्यति** (किरात० १४.६०), क्या यह तपस्वी अपने तपोबल से अनेक शरीरों को रच कर बाण छोड़ रहा है?। किम् (सर्वनाम न कि अव्यय) शब्द के साथ जुड़ कर वितर्कपूर्वक जिज्ञासा में—**कास्विदियमवगुण्ठनवती**(शाकुन्तल० ५.१३), यह घूंघट वाली स्त्री कौन हो सकती है?। किम्+स्वित्=केवल प्रश्न में—**कस्यस्विद् हृदयं नास्ति किंस्विद्वेगेन वर्धते। अश्मनो हृदयं नास्ति नदी वेगेन वर्धते॥ किंस्विद् गुरुतरं भूमेः किंस्विदुच्चतरं च खात्। माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा॥** महाभारतवनपर्वस्थ यक्षोपाख्यान में इस के बहुत सुन्दर उदाहरण हैं। इन स्थानों पर 'किंस्वित्' का अर्थ 'कौन सी वस्तु' है।

(३२) आहोस्वित्*=अथवा—**आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधाम्** (शाकुन्तल० ५.९), अथवा मेरे पापों के कारण पौधों में पुष्पादि का आना रुक गया है।

(३३) अतीव*=बहुत ही, अत्यन्त। **भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः** (गीता० १२.२०)। **अतीव खलु ते कान्ता वसुधा वसुधाधिप। गतासुरपि यां गात्रैर्मां विहाय निषेवसे** (रामायण० ४.२०.६), तारा अपने पति की मृत्यु पर विलाप करती हुई कहती है—हे राजन्! निश्चय से तुझे वसुधा मेरे से भी अधिक प्यारी है जो तुम

मुझे छोड़ कर मर कर भी इस से लिपटे हुए हो। **त्वञ्चातीव दुर्गतस्तेन तत्तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम्** (हितोप० १)।

(३४) बत*=१. सम्बोधन में—**बत वितरत तोयं तोयवाहा नितान्तम्** (गणरत्न०), ऐ बादलो खूब पानी बरसाओ। **त्यजत मानमलं बत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः** (रघु० ९.४७), हे ललनाओ! मान का त्याग कर दो, कलह करना छोड़ दो, उपभोगयोग्य यह जवानी फिर वापस नहीं आती। २. खेद या दुःख प्रकट करने में—**अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्** (गीता० १.४५), आश्चर्य तथा खेद है कि हम इतना बड़ा पाप करने में उद्यत हो रहे हैं। ३. अनुकम्पा प्रकट करने में—**क्व बत हरिणकानां जीवितञ्चातिलोलं क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते** (शाकुन्तल० १.१०),हाय! कहां तो इन बेचारे हरिणों का अतिचञ्चल जीवन और कहां वज्र की तरह तीक्ष्ण धार वाले तुम्हारे बाण। ४. आश्चर्य प्रकट करने में—**अहो बत महच्चित्रम्** (कादम्बरी०)। ५. प्रसन्नता या सन्तोष प्रकट करने में—**अपि बतासि स्पृहणीयवीर्यः** (कुमार० ३.२०)।

(३५) अद्यापि*=आज भी, अब तक भी—**अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटम्** (चौरपञ्चा० ५०)। **अद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः** (सुभाषित०)। **गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु** (वेणी० १.११)। **तृष्णे जृम्भसि पापकर्मपिशुने नाद्यापि संतुष्यसि** (वैराग्य० २)।

(३६) प्रभृति*=तब से ले कर (आज तक)। **शैशवात् प्रभृति पोषितां प्रियाम्** (उत्तरराम० १.४५)। इस के योग में पञ्चमी का प्रयोग होता है। तद्दिनात् प्रभृति, ततः प्रभृति, अतः प्रभृति, अद्यप्रभृति आदि। इस का विशेष विवेचन (५५२) सूत्रस्थ टिप्पण में देखें।

(३७) तु*=१. किन्तु, परन्तु, लेकिन—**स सर्वेषां सुखानामन्तं ययौ। एकं तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे** (कादम्बरी०)। **मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति** (हितोप० १.१३३)। इस अर्थ में किम् या परम् के साथ इस का प्रयोग बहुधा देखा जाता है। 'किन्तु' और 'परन्तु' ये निपातसमुदाय 'तु' की तरह अर्थ देते हैं—**भाग्येनैतत् सम्भवति किन्त्वस्मिन्नात्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न कार्या** (हितोप० १)। **अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान् मतो मे** (रघु० १४.४०)[1]। २. अवधारण (ही) अर्थ में—**भीमस्तु पाण्डवानां रौद्रः** (गणरत्न०), भीम ही पाण्डवों में भयङ्कर था। **धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः** (हितोप० १.१०३)। **स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला** (वैराग्य० ५३)। ३. वैपरीत्यप्रतिपादन करने में—**अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्** (हितोप० १.७०)।

---

१. ध्यान रहे कि 'तु' का वाक्य के आदि में प्रयोग नहीं होता लेकिन 'किन्तु' 'परन्तु' का हो सकता है—**किन्तु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम्। न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी** (रघु० १.६५)।

मृद्घटवत् सुखभेद्यो दुःसन्धानश्च दुर्जनो भवति । सुजनस्तु कनकघटवद् दुर्भेद्यश्चाशु सन्धेयः (हितोप० १.६२) । ३. विशेषता या उच्चता प्रतिपादन करने में—**मिष्टं पयो मिष्टतरं तु दुग्धम्** (गणरत्न०), पानी मीठा होता है पर दूध उस से अधिक मीठा होता है । **सकृद्दुःखकराबाधावन्तिमस्तु पदे पदे** (हितोप० प्रस्तावना १३) । ४. हेतु (क्योंकि)—**वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते । सर्वत्रैवं विचारे तु भोजनेऽप्यप्रवर्तनम्** (हितोप० १.२३)। **हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्** (गीता० २.५) । ५. और अब (दूसरी तरफ)—**अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम** (गीता० १.७)। **सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ** (गीता० १८.३६) । ६. पादपूर्ति के लिये—**अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः । क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा** (हितोप० १.१२५) ।

(३८) ननु* । १. अवधारण (निश्चय ही, वस्तुतः, सचमुच)—**ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः** (शाकुन्तल० ६), तोफ़ान में भी निश्चय ही पर्वत निश्चल रहते हैं। **ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद् विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः** (विक्रमो० १.१७), वस्तुतः यह इन्द्र का ही बल है जो उस के पक्षपाती शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । **मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे** (शान्तिशतक), मेरी निन्दा से यदि लोग प्रसन्न होते हैं तो यह निश्चय ही मुझे बिना यत्न उन का अनुग्रह प्राप्त हो रहा है । **ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः** (किरात० २.५), सचमुच भाषण के विषय में गुणग्राही विद्वज्जन वक्ता की ओर ध्यान नहीं दिया करते वे तो भाषण की सारासारता को ही देखा करते हैं । २. सम्बोधन—**ननु मूर्खाः पठितमेव युष्माभिस्तत्काण्डे** (उत्तरराम० ४), ऐ मूर्खो ! उस काण्ड में यह विषय तो तुम पढ़ ही चुके हो । ३. प्रार्थना, याचना—**ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम्** (कुमार० ४.३२), कृपया मुझे मेरे पति के पास पहुंचा दो । ४. पूछताछ (Enquiry) करने में—**ननु समाप्तकृत्यो गौतमः** (मालविका० ४), क्या गौतम ने अपना काम समाप्त कर लिया है ? । परवर्ती भारतीय तर्क शैली में प्रायः 'ननु' से ही शङ्का का आरम्भ किया जाता है ।

(३९) हि* । १. केवल, सिर्फ—**धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः** (हितोप० १.२६) । **मूढो हि मदनेनायास्यते** (कादम्बरी०) । २. हेत्वर्थ में (क्योंकि)—**अग्निरिहास्ति धूमो हि दृश्यते** (गणरत्न०) । **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च** (गीता० २.२७), हि=यतः । ३. अवधारण (ही, वस्तुतः, निश्चय से आदि)—**न हि सुशिक्षितोऽपि वटुः स्वस्कन्धमारोढुं पटुः** (लौकिक० २२०) । **देव प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रं किमत्र वाग्व्यवहारेण** (मालविका० १) । **प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्** (नीति० ५२) । ४. उदाहरण प्रदर्शन करने में—**प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् । सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः** (रघु० १.१८) । ५. पादपूर्ति या वाक्यालंकार के लिये—**भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि** (गीता० १.११) । 'हि' का वाक्य के आदि में प्रयोग नहीं होता ।

(४०) नाम*। १. नामक, नाम वाला, नाम से प्रसिद्ध -- **अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम्** (पञ्च० १)। **अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानी** (हितोप० १)। **अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः** (कुमार० १.१)। २. वस्तुतः—**वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं हि रत्नम्** (मृच्छ० ३), वीणा वस्तुतः एक ऐसा रत्न है जो समुद्र से उत्पन्न नहीं हुआ। **विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम** (शाकुन्तल० १), वस्तुतः तपोवन में विनीतवेष से प्रवेश करना चाहिये। **तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः** (मृच्छ० ५.३२), वस्तुतः पुरुष कठोर होते हैं। ३. सम्भावना—**को नाम राज्ञां प्रियः** (पञ्च० १.१५६) राजाओं का कौन प्यारा हो सकता है ? **को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे** (उत्तरराम० ७.४), जब दैव फल देने को उद्यत हो तो भला कौन पुरुष उस के द्वार बन्द कर सकता है ? **अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम** (शाकुन्तल० ५.८), धन के आधिक्य में बन्धुओं के बन जाने की सम्भावना है। **अये पदशब्द इव, स नाम रक्षिणः** (मृच्छ० ३), अरे पांव की आहट सुनाई दे रही है। मेरे विचार में रक्षी का शब्द न होगा। ४. अपमानाश्रित क्रोध प्रकट करने में—**ममापि नाम दशाननस्य परैः परिभवः** (गणरत्न०), क्या शत्रुओं द्वारा मुझ रावण का भी तिरस्कार ! । **ममापि नाम सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः** (शाकुन्तल० ६), क्या हमारे भवनों पर भी भूतों द्वारा आक्रमण किया जा रहा है ? ५. मिथ्या-छल-कपट प्रकट करने में --**परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्** (कुमार० ५.३२), क्षण भर थकावट को दूर करने का बहाना कर के। **कार्तान्तिको नाम भूत्वा** (दशकु०), कपट से ज्योतिषी बन कर। ६. आश्चर्य में --**आश्चर्यमन्धो नाम पर्वतमारोक्ष्यति** (काशिका ३.३.१५१), आश्चर्य है कि अन्धा होता हुआ भी पहाड़ पर चढ़ रहा है। **आश्चर्यं बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते** (काशिका ३.३.-१५१)। **आश्चर्यं यदि मूको नामाधीयीत** (सि० कौ०)। ऐसे स्थलों पर **शेषे लृडयदौ** (३.३.१५१) सूत्र से लृँट् का प्रयोग होता है। परन्तु 'यदि' शब्द का भी साथ में प्रयोग हो तो लिँङ् ही होता है।

(४१) इव*। १. सादृश्य (के समान, की तरह)—**छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्** (रघु० २.६), छाया के समान राजा दिलीप उस नन्दिनी का अनुसरण करता था। **असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता** (मृच्छ० १.३४), दुर्जन पुरुष की सेवा के समान दृष्टि अन्धकार में व्यर्थ अर्थात् असफल हो रही है। **शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना** (चाणक्य०), विद्या के बिना मनुष्य का जीवन कुत्ते की पूंछ की तरह व्यर्थ है। २. उत्प्रेक्षा (जैसा कि, मानो) ---**साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्** (शाकुन्तल० १.६), जैसा कि मानो मैं साक्षात् शिव को देख रहा हूं। **वर्षतीवाञ्जनं नभः** (मृच्छ० १.३४), आकाश मानो सुरमा बरसा रहा है। ३. स्वल्प —**कडार इवायम्** (गणरत्न०), यह कुछ कुछ पीला है। ४. वाक्यालंकार---**कथमिवैतद्भविष्यति** (गणरत्न०)।

(४२) इति*। १. समाप्ति अर्थ में —**इति रघुवंशे प्रथमः सर्गः**। २. हेत्वर्थ में—**वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि** (उत्तरराम० १), मैं विदेशी हूं इसलिये पूछ रहा हूं।

पुराणमित्येव न साधु सर्वम् (मालविका० १.२), पुराना है इसलिये सब ठीक नहीं होता । **हन्तीति पलायते** (सि० कौ०), मारता है इसलिये भागता है। **अयं रत्नाकरोऽम्भोधिरित्यसेवि धनाशया। धनं दूरेऽस्तु वदनमपूरि क्षारवारिभिः** (साहित्य०)। **शरीरस्य विनाशो मा भूदिति मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम्** (कादम्बरी०) । ३. पूर्वोक्त या कथित के निर्देश में—**इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद् दीनदयालुतयाऽवनिपालः। रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय** (नैषध० १.१४३) । **इत्युक्तवन्तं परिरभ्य दोर्भ्याम्** (किरात० ११.८०) । **ज्ञास्यति कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति** (शाकुन्तल० १.१३) । ४. शब्दनिर्देश में—**सख्यशिश्वीति भाषायाम्** (४.१.६२)। **विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्** (५७०)। **अहो, अथो इति निपातेषु पठितौ । अमरा निर्जरा देवा इत्यमरः** । ५. वक्ष्यमाण के निर्देश में—**रामाभिधानो हरिरित्युवाच** (रघु० १३.१), राम ने वक्ष्यमाण प्रकारेण वचन कहे । ६. के विषय में, के सम्बन्ध में—**शीघ्रमिति सुकरं निभृतमिति चिन्तनीयम्** (शाकुन्तल० ३), जहां तक शीघ्रता का सम्बन्ध है वह आसान है पर जहां गुप्तरूप का सम्बन्ध है वह चिन्तनीय है । ७. विवक्षा में—**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** (११८१), वह उस का है अथवा उस में है ऐसी विवक्षा होने पर प्रथमान्त समर्थ से मतुँप् प्रत्यय होता है ।

(४३) दिष्ट्या* । हर्ष का विषय, आनन्द का विषय, सौभाग्य—**दिष्ट्या प्रतिहतममङ्गलम्** (मालती० ४), हर्ष का विषय है कि अमङ्गल नष्ट हो गया है । **दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चाऽऽयुष्मान् वर्धते** (शाकुन्तल० ७)। **दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः । यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च** (उत्तरराम० १.३२) । यह विभक्तिप्रतिरूपक निपात है ।

(४४) नु* । १. सन्देहमिश्रित प्रश्न में—**स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु** (शाकुन्तल० ६.१०), क्या यह स्वप्न था या कोई माया अथवा बुद्धि का व्यामोह ही था ? इस का 'किम्' शब्द या किम्शब्दोत्पन्न कथम्, क्व आदि शब्दों के साथ बहुधा प्रयोग उपलब्ध होता है। तब 'क्या' के साथ 'सम्भवतः' या 'वस्तुतः' का भाव भी जुड़ा रहता है—**ततो दुःखतरं नु किम्** ? (गीता० २.३३), वस्तुतः इस से अधिक और क्या दुःख हो सकता है । **कथं नु गुणवद् विन्देयं कलत्रम्** (दशकु०), गुणवती भार्या को पाना कैसे मेरे लिये सम्भव हो सकेगा ?

(४५-४६) यद्, तद् । चूंकि—इसलिये । **यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः । तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते** (नीति० २९) । चूंकि अचेतन सूर्यकान्त भी सूर्य के पादों (किरणों) से छुआ हुआ जलने लग जाता है इसी कारण तेजस्वी पुरुष दूसरों के किये तिरस्कार को कैसे सह सकता है ? केवल 'यद्' का भी बहुत प्रयोग देखा जाता है—**किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्** (मुद्रा० २.१८), क्या शेषनाग के शरीर में भारजनित पीड़ा नहीं होती जो वह पृथ्वी को फेंक नहीं देता ।

(४७) यदपि=यद्यपि। **वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तरस्याम्** (मेघ० १.२७)।

(४८-४९) ते, मे। ये दोनों विभक्तिप्रतिरूपक निपात हैं जो क्रमशः 'त्वया' और 'मया' के अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। **श्रुतं ते वचनं तस्य** (वामनवृत्ति ५.२.१०), त्वया तस्य वचनं श्रुतमित्यर्थः। **वेदानधीत इति नाधिगतं पुरा मे** (वही, ५.२.१०), मे=मया। **बिलस्य वाणी न कदापि मे श्रुता** (पञ्च० ३.२१२), मया न श्रुतेत्यर्थः। **श्रुतं ते राजशार्दूल। श्रुतं मे भरतर्षभ** (गणरत्न०)। वामन ने अपने सूत्रों में भी इन को निपात माना है—**ते-मे-शब्दौ निपातेषु** (वामनसूत्र० ५.२.१०)।

(५०) मम=मेरा। इसे निपात मान कर 'ममत्व, ममता, निर्मम' आदि शब्द सिद्ध होते हैं—**क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव** (कुमार० १.१२), ममशब्दात् त्वप्रत्यय इति मल्लिनाथः। ममेति षष्ठ्यन्तप्रतिरूपको निपात इति वल्लभः।

(५१) वाम्=तुम दोनों। इसे भी कई वैयाकरण विभक्तिप्रतिरूपक निपात मानते हैं। **गेयं केन विनीतौ वाम्** (रघु० १५.६९), वाम्=युवाम् इत्यर्थः। प्रथमा के द्विवचन में 'वाम्' दुर्लभ है अतः इसे निपात माना है।

(५२) अस्तु=१. स्वीकृति—**एवमस्तु को नाम दोषः** (गणरत्न०)। अस्तुङ्कारः='अस्तु' करने वाला। **अस्तोश्चेति वक्तव्यम्** इति वार्तिकेन मुँम्। अस्त्विति तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययम् इति तत्त्वबोधिनी। २. असूया (क्रोध)—**अस्तु ज्ञास्यसि कालेन सोऽल्पेनैव न भूयसा** (मूलं मृग्यम्)। ३. पीड़ा (दुःख)—**अस्तु नाम विधुरेण वेधसा साधुरप्यलमुपाधिभिर्धुवम्। बाध्यते**—(मूलं मृग्यम्), दुःख का विषय है कि प्रतिकूल दैव सज्जन को भी नाना छलों से बहुत दुःखी करता है। ४, निषेध—**अस्तु सान्त्वा** (गणरत्न०), अब सामप्रयोग (शान्त्युपाय) को रहने दो इस से कुछ सिद्ध न होगा।

(५३) नास्ति=अविद्यमान। यह भी तिङन्तप्रतिरूपक निपात है। इसी से 'नास्तिकः, नास्तिवादः, नास्तिक्यम्, नास्तिक्षीरा' प्रभृति शब्द सिद्ध होते हैं। देखें पाणिनिसूत्र—**अस्ति-नास्ति-दिष्टं मतिः** (४.४.६०)।

(५४) येन=जिस से। **वितर गिरमुदारां येन मूकाः पिकाः स्युः** (गणरत्न०), ऐसी वाणी बोलो जिस से कोयलें चुप हो जायें।

(५५) तेन=इस से, इस कारण से। **अपराद्धोऽहमत्रभवत्सु, न च मर्षितः, तेन तप्ये नितान्तम्** (व्या० च०)। **येन दाता तेन श्लाघ्यः** (गणरत्न०)।

(५६) अकस्मात्*=अचानक, एकदम, विना कारण के। **इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात् पतिरार्यवृत्तः** (रघु० १४.५५)। **नाऽकस्माच्छाण्डिली मातर्विक्रीणाति तिलैस्तिलान्** (पञ्च० २.७२)। **अकस्माद्भवः**—आकस्मिकः।

(५७) प्रसह्य*=बलपूर्वक, जबरदस्ती। **प्रसह्य मणिमुद्धरेद् मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्** (नीति० ३)। **प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष** (रघु० २.२७)। **प्रसह्य वित्तानि**

हरन्ति चौराः(हेमचन्द्र)। इसी से ही 'प्रसह्यकारी, प्रसह्यहरणम्' आदि शब्द बनते हैं।

(५८) अह्नाय=शीघ्र, फौरन। **अह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्** (रघु० ५.७१)।

(५९) व=सदृश। **मणीव उष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम** (महाभारत १२.१७२.१२)। **अत्र तु इवार्थे वशब्दो वाशब्दो वा बोध्यः**—सि० कौ०।

(६०) समन्तात्*=चहुँ ओर[1]। हेमचन्द्र ने इसे विभक्तिप्रतिरूपक निपात माना है। **लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्तात्** (गीता० ११.३०)। **कालागुरुर्दहनमध्यगतः समन्तात् लोकोत्तरं परिमलं प्रकटीकरोति** (भामिनी० १.६६)।

(६१) भवतु=अलम्(बस, निषेध) का अर्थ। **गोत्रेण पुष्करावर्त्त ! किं त्वया गर्जितैः कृतम् ! विद्युताऽलं भवत्वद्भिर्हंसा ऊर्ध्वबिलं घनम्** (द्व्या०)।

(६२) बलवत्=पूरी तरह से, पूर्णरूपेण। **बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः** (शाकुन्तल० १.२)। **पुनर्वशित्वाद् बलवन्निगृह्य** (कुमार० ३.६९)।

(६३) तदपि=तो भी। **तदपि तव गुणानामीश पारं न याति** (शिवमहिम्न-स्तोत्र)।

(६४) यस्मात्=जिस कारण से, क्योंकि। **अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति। मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा** (रघु० १.७७)।

(६५) तस्मात्=इसलिये। **तस्माद् युध्यस्व भारत** (गीता० २.१८)।

(६६) आः(स्)। १. स्मरण में—**आः, उपनयतु भवान् भूर्जपत्त्रम्** (विक्रमो० २)। २. क्रोध प्रकट करने में—**आः कथमद्यापि राक्षसत्रासः** (उत्तरराम० १)। **आः पापे तिष्ठ तिष्ठ** (मालती० ८)। ३. क्रोधपूर्वक अपाकरण में—**आः क एष मयि स्थिते चन्द्रमभिभवितुमिच्छति बलात्** (मुद्रा० १)। **आः ! वृथामङ्गलपाठक** (वेणी० १)। ४. सन्ताप(दुःख) प्रकट करने में—**विद्यामातरमाः प्रदर्श्य नृपशून् भिक्षामहे निस्त्रपाः** (उद्भट)। (**आः स्मरणेऽपाकरणे कोपसन्तापयोस्तथा**—इति मेदिनी)।

(६७) ही। विस्मय में—**हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः** (माघ० ११.६४), आश्चर्य है कि अभागे विधाता की चेष्टाओं का विचित्र फल है।

(६८) वै*=अवधारण(ही)—**पिता वै गार्हपत्योऽग्निः** (मनु० २.२३१)। **आपो वै नरसूनवः** (मनु० १.१०)। **आत्मा वै पुत्रनामासि** (कौषी० ब्रा० २.१६)।

(६९) किञ्च*=और भी, इस के अतिरिक्त, पुनः। **किञ्च सर्वगुणसम्पन्नोऽपि भेदेन बध्यते** (पञ्च० ४)। **किञ्च काव्यस्योपादेयत्वमग्निपुराणेऽप्युक्तम्** (साहित्य० १)। **किञ्च काव्याद् धर्मप्राप्तिर्भगवन्नारायणचरणारविन्दस्तवादिना** (साहित्य० १)।

(७०) यदि*=अगर (पक्षान्तर)—**यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः**

---

१. इसी अर्थ में 'समन्ततस्' अव्यय भी बहुत प्रसिद्ध है। यथा—**मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः** (गीता० ६.२४)। **समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि**—इत्यमरः। समन्तादिति समन्ततः, आद्यादित्वात्तसिरित्यमरव्याख्यायां भानुजि-दीक्षितः।

(पञ्च० २.१३८) । **नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्** (नीति० ९३)।

(७१) यद्यपि=अगरचे, यद्यपि—**यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः** (गीता० १.३७)। **यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्। स्वजनः श्वजनो मा भूत्सकलं शकलं सकृच्छकृत्** (सुभाषित०)।

(७२) यद्वा*=अथवा। **यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः** (गीता० २.६)।

(७३) यदि वा*=अथवा। **स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा** (उत्तरराम० १.१२)।

(७४) अथवा*। १. 'वा' के अर्थ में—**व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत्** (हितोप० १.५८)। २. पक्षान्तर में—**अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः** (रघु० १.४)।

(७५) वारं वारम्*=बारबार—**मनसि विचारय वारं वारम्** (चर्पट० ११)।

(७६) प्रेत्य। १. परलोक—**अन्यो धनं प्रेत्यगतस्य भुङ्क्ते** (गणरत्न०)। २. इस संसार से गया हुआ—प्रेत्यभावः, प्रेत्यलोकः। **प्रेत्यामुत्र भवान्तरे** इत्यमरः।

(७७) पुरतः(स्)*=सामने, आगे। **यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः** (नीति०)। **स्यात्पुरः पुरतोऽग्रतः**—इत्यमरः।

(७८) प्रायेण*=प्रायः, अक्सर, बहुधा। **प्रायेणाऽधममध्यमोत्तमगुणः संवासतो जायते** (पञ्च० १.२७३)। **प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना निन्दन्ति दैवं न तु कुकृतं स्वम्** (महाभारत० ८.९१.१)। वामन शिवराम आप्टे आदि कोषकारों ने इसे अव्यय माना है। परन्तु अनेक वैयाकरण 'प्राय' (पुं०) शब्द से **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** (वा०) द्वारा तृतीया विभक्ति हुई मान कर इसे अव्यय नहीं मानते।

(७९) प्रायशः (स्)*=प्रायः, अक्सर, बहुधा। **आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि** (मेघ० १.१०)। इसे तद्धितशस्-प्रत्ययान्त माना जा सकता है। तब **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** (३६८) से अव्यय-संज्ञा हो जायेगी।

(८०) वस्तुतः(स्)*=यथार्थतः, दर असल, हकीकत में, सत्यतः, मूलतः—**वस्तुतः लृकारस्य ऋकारग्राहकत्वं न कुत्राप्युपलभ्यते** (तत्त्वबोधिनी संज्ञाप्रकरण)।

(८१) अथ किम्*=जी हां। **सर्वथा अप्सरःसम्भवैषा। अथ किम्** (शाकुन्तल० १)। **अपि वृषलमनुरक्ताः प्रकृतयः? अथ किम्** (मुद्रा० १)।

(८२) अन्वक्=पीछे। **तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः** (रघु० २.१६)। **अन्वगन्वक्षमनुगेऽनुपदं क्लीबमव्ययम्**—इत्यमरः।

(८३) अपि वा*=अथवा। **हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा** (रघु० १.१०)।

(८४) कस्मात्*=क्यों, किस कारण, किस लिये। **अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया** (शाकुन्तल० ६.१३)। इस विभक्तिप्रतिरूपक

अव्यय से नञ्समास हो कर 'अकस्मात्' अव्यय बनता है। पुन: इस अव्यय से अकस्माद्भव आकस्मिक: (विनयादित्वाट् ठकि टेर्लोपः) सिद्ध होता है।

(८५) प्रगे = प्रातःकाल, सुबह सवेरे। **सायं स्नायात् प्रगे तथा** (मनु० ६.६)। इसी से ही 'प्रगेशयः' (प्रभात में सोने वाला) आदि निष्पन्न होते हैं। **सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टयुटयुलौ तुँट् च** (१०८३) सूत्र में अनव्यय प्रगशब्द को एत्व निपातन किया गया है।

(८६) परश्वः (स्)* = आगामी कल से अगला दिन, परसों। **परश्वो यास्यति मुनिः। अनागतेऽह्नि श्वः परश्वश्च परेऽहनि**—इत्यमरः।

(८७) स्राक् = शीघ्र। **स्राक् सरन्त्यभिसारिकाः** (हेमचन्द्र)।

(८८) अरम् = शीघ्र। **अरं याति तुरङ्गमः** (हेमचन्द्र)।

(८९) रहः (स्)* = एकान्त, एकान्त में, चुपके से। **अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः** (शाकुन्तल० ५.२४)। रहो भवं रहस्यम्, दिगादित्वाद्यत्। रहस् शब्द सकारान्त नपुंसक भी होता है। यथा—**रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः** (किरात० १.३)।

(९०) उपजोषम् = १. अपनी इच्छा के अनुसार, स्वेच्छा से। **यथोपजोषं वासांसि परिधाय**—(भागवत० ८.९.१५), अपनी इच्छानुसार वस्त्र धारण करके। २. 'दिष्टया' के अर्थ में—**उपजोषं ते पुत्रो जातः** (हेमचन्द्र), बड़े आनन्द की बात है कि तेरा पुत्र उत्पन्न हुआ है। 'समुपजोषम्' भी देखा जाता है। **दिष्टया समुपजोषञ्चेत्यानन्दे**—इत्यमरः।

स्वरादियों और चादियों का ठीक तरह से पृथक् २ निरूपण एक दुष्कर कार्य है। कुछ स्वरादि शब्द चादियों में तथा कुछ चादि शब्द स्वरादियों में मिश्रित हो गये हैं। कुछ शब्द तो दोनों ही गणों में पढ़े गये हैं। परन्तु यहां यह ध्यातव्य है कि जिन में निपातस्वर (आद्युदात्त) इष्ट हो उन्हें चादियों में तथा जिन में अन्तोदात्त-स्वर इष्ट हो उन्हें स्वरादियों में गिनना चाहिये। किञ्च जहां दोनों प्रकार के स्वर अभीष्ट हों उन को दोनों ही गणों में पढ़ना चाहिये[1]। इन चादियों से अतिरिक्त अन्य भी बहुत से निपात होते हैं। उन सब की भी **स्वरादिनिपातमव्ययम्** (३६७) सूत्र से अव्ययसंज्ञा हो जाती है। इन सब का विवेचन जानने के इच्छुक **प्राग्रीश्वरान्निपाताः** (१.४.५६) के अधिकार को अष्टाध्यायी या काशिकावृत्ति में देखें[2]।

---

१. परन्तु यह स्वरव्यवस्था अनेकाच् शब्दों के लिये ही समझनी चाहिये एकाच् शब्दों के लिये नहीं, क्योंकि एकाच् शब्दों में चाहे आद्युदात्त स्वर हो या अन्तोदात्त, कोई अन्तर ही नहीं पड़ता।

२. निपातों के विषय में एक सूक्ति बहुत प्रसिद्ध है—

इयन्त इति संख्यानं निपातानां न विद्यते।
प्रयोजनवशादेते निपात्यन्ते पदे पदे॥

प्र आदि शब्द भी निपाताधिकार में **प्रादयः** (५४) सूत्रद्वारा निपातसंज्ञक होकर अव्ययसंज्ञक हो जाते हैं। इन प्र आदियों का क्रिया के योग में तथा कुछ का क्रियायोग के अभाव में भी स्वतन्त्ररीत्या प्रयोग हुआ करता है। क्रिया के योग में इन की **उपसर्गाः क्रियायोगे** (३५) सूत्र से उपसर्गसंज्ञा विशेष है। निपातसंज्ञा तो दोनों अवस्थाओं में ही अक्षुण्ण बनी रहती है। अब प्रादियों में क्रियायोग के अभाव में स्वतन्त्रतया प्रयुक्त होने वाले कुछ प्रसिद्ध २ निपातों का विवेचन करते हैं—

(१) अनु। १. पीछे—**विष्णोः पश्चाद् अनुविष्णु** (सि० कौ०)। **आश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थाम्** (मालती० ६.२६)। २. के साथ साथ (लम्बाई में)—**अनुगङ्गं वाराणसी** (व्या० च०), गङ्गातट के साथ साथ बनारस बसा हुआ है। ३. हीन अर्थ में—**अनु पाणिनिमन्ये वैयाकरणाः** (व्या० च०), अन्य वैयाकरण पाणिनि से नीचे हैं। **अन्वर्जुनं धानुष्काः** (व्या० च०), अन्य धनुर्धारी अर्जुन से हीन हैं। इसी प्रकार—**अन्वाम्रं फलानि** आदि। ४. लक्षण (निशानी) अर्थ में—**वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्** (काशिका), बिजली वृक्ष के समीप चमक रही है। इसी प्रकार—**क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्** (रघु० २.२४)। ५. इत्थम्भूताख्यान (वह इस तरह का है—इस प्रकार कहने) में—**साधुर्देवदत्तो मातरमनु**, देवदत्त माता के प्रति सद्व्यवहारी है। ६. भाग (हिस्सा) अर्थ में—**लक्ष्मीर्हरिमनु** (सि० कौ०), लक्ष्मी विष्णु का भाग है। ७. वीप्सा—**वृक्षं वृक्षमनु सिञ्चति** (सि० कौ०), प्रत्येक वृक्ष को सींचता है। ८. हेतुयुक्त अनन्तर अर्थ में—**जपमनु प्रावर्षत्** (सि० कौ०), जप के कारण जप के बाद वर्षा हुई। ९. के अनुसार—**अनुक्रमम्, अनुज्येष्ठम्, अनुरूपम्**। इस के अन्य भी अनेक अर्थ आकरग्रन्थों में देखें। ध्यान रहे कि प्रायः इन अर्थों में इस की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाती है तब **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** (२.३.८) सूत्र से इस के योग में द्वितीया विभक्ति हो जाती है। विशेष सिद्धान्तकौमुदी में देखें।

(२) आङ्=आ। १. ईषत् (थोड़ा) अर्थ में—ओष्णम् (ईषदुष्णम्—कुछ गरम)। २. मर्यादा अर्थ में—**ओदकान्ताद् आवनान्ताद्वा प्रियं प्रोष्यमनुव्रजेत्** (धर्मशास्त्रे), तालाब या वन के अन्त तक प्रवास करते बन्धु के साथ जाये। इसीप्रकार—**आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्** (शाकुन्तल० १.२)। **आ विन्ध्याद् उत्तरपथः**। ३. अभिविधि अर्थ में—**आ कुमाराद् यशः पाणिनेः**, पाणिनि का यश बच्चों तक अर्थात् बच्चों को भी अभिव्याप्त कर रहा है। इसीप्रकार—**आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि** (शाकुन्तल० १)। मर्यादा और अभिविधि अर्थों में **आङ् मर्यादावचने** (१.४.८८) से आङ् की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाती है तब इस के योग में **पञ्चम्यपाङ्परिभिः** (२.३.१०) सूत्र से पञ्चमीविभक्ति हो जाती है।

(३) अधि। १. स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध में—**अधि ब्रह्मदत्ते पाञ्चालाः** (काशिका), पाञ्चालदेश ब्रह्मदत्त के अधीन है। **अधि पाञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः** (काशिका), ब्रह्मदत्त पाञ्चालदेश का अधिकृत राजा है। इसी प्रकार—**अधि रामे भूः, अधि भुवि रामः** (सि० कौ०)। ध्यान रहे कि यहां **अधिरीश्वरे** (१.४.९६) सूत्र से 'अधि' की

कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो कर उस के योग में **यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी** (२.३.९) द्वारा कभी स्वामिवाचक से तथा कभी स्ववाचक से सप्तमी विभक्ति हो जाती है। २. में, के विषय में—**हरौ इत्यधिहरि** (हरि में या हरि के विषय में)। अव्ययीभावसमास के नित्य होने से लौकिकविग्रह में 'अधि' लिखा नहीं जा सकता।

(४) अपि। १. प्रश्न में—**अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः** (शाकुन्तल० १), क्या कुलपति आश्रम में हैं ? **अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते ?** (रघु० ५.४)। **अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशम्** (कुमार० ५.३३)। २. थोड़ा, स्तोक, बिन्दु, ज़रा सा अंश आदि अर्थों में—**सर्पिषोऽपि स्यात्, मधुनोऽपि स्यात्** (काशिका), घृत का अंश होगा, मधु का अंश होगा। ३. कामचारानुज्ञा—**अपि सिञ्च अपि स्तुहि** (काशिका), तुम्हारी इच्छा है सींचो या स्तुति करो। ४. सम्भावना प्रकट करने में (शायद)—**अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात्** (शाकुन्तल० १)। **अपि नाम रामभद्रः पुनरपीदं वनमलङ्कुर्यात्** (उत्तरराम० २)। ५. समुच्चय (भी)—**अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु** (शाकुन्तल० १)। **विष्णुशर्मणापि पाठितास्ते राजपुत्राः** (पञ्च० प्रस्तावना)। ६. चाहे हो—**अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि** (सुभाषित०)। **अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्** (उत्तरराम० १.२८)। ७. ज़ोर या Stress देने के लिये—**विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणासौ** (हितोप० १.१९)। **यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः** (शाकुन्तल० १)। ८. कवियों द्वारा विरोधाभास प्रदर्शित करने में—**खर्वामपि अखर्वपराक्रमाम्, श्यामामपि यशःसमूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम्** (शिवराज० २)। ९. 'किम्' के साथ लग कर अनिश्चय में—**व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः** (उत्तरराम० ६.१२)। **केऽपि एते प्रवयसः त्वां दिदृक्षवः** (उत्तरराम० ४)।

(५) अभि। १. लक्षण (निशानी)—**वृक्षमभि विद्योतते विद्युत्** (काशिका), वृक्ष के सामने बिजली चमक रही है। २. इत्थम्भूताख्यान—**साधुर्देवदत्तो मातरमभि** (काशिका)। ३. वीप्सा—**वृक्षं वृक्षमभि सिञ्चति**। ४. आभिमुख्य में—**अग्निमभि शलभाः पतन्ति** (काशिका), पतंगे अग्नि के अभिमुख गिर रहे हैं। आभिमुख्य अर्थ में वैकल्पिक अव्ययीभावसमास का भी विधान है—**अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति**। लक्षणादि अर्थों में 'अभि' की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो कर उस के योग में द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

(६) प्रति। १. लक्षण—**वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्** (काशिका)। **तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः** (रघु० २.७०)। **मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति** (शाकुन्तल० १)। २. इत्थम्भूताख्यान—**साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति** (काशिका)। ३. भाग—**यदत्र मां प्रति स्यात्तद् दीयताम्** (काशिका), इस में मेरा जो हिस्सा हो वह दीजिये। ४. वीप्सा—**वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति**। ५. प्रतिनिधि—**अभिमन्युरर्जुनतः प्रति** (काशिका), अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है। **प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति** (काशिका), प्रद्युम्न वासुदेव का प्रतिनिधि है। ६. प्रतिदान (बदले में

देना)—**तिलेभ्यः प्रति यच्छति माषान्** (काशिका), तिलों के बदले माष देता है। **शेफालीभ्यो ददुर्लास्यं प्रति गन्धाच्च मारुताः** (व्या० च०), वायु ने शेफालिका से गन्ध ले कर उस के बदले उन्हें नृत्य दे दिया[1]। ७. आभिमुख्य में—**अग्निं प्रति शलभाः पतन्ति, प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति**। पूर्ववत् वैकल्पिक अव्ययीभावसमास हो जाता है।

(७) परि। १. लक्षण (निशानी)—**वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्** (काशिका), वृक्ष पर बिजली चमक रही है। २. इत्थम्भूताख्यान—**साधुर्देवदत्तो मातरं परि**। ३. भाग—**यदत्र मां परि स्यात्तद्दीयताम्**, इस में मेरा जो भाग है वह दे दीजिये। ४. वीप्सा—**वृक्षं वृक्षं परि सिञ्चति**। ५. मर्यादा—**परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः**, त्रिगर्त-देश तक (पर त्रिगर्त को छोड़ कर) मेघ बरसा। ६. दुःखी, तंग—**परिग्लानोऽध्ययनाय** =पर्यध्ययनः[2]।

(८) अप। तक, मर्यादा अर्थ में—**अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः**, त्रिगर्तदेश तक (पर त्रिगर्त में नहीं) मेघ बरसा। **अपपरी वर्जने** (१.४.८७) से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो कर उस के योग में—**पञ्चम्यपाङ्परिभिः** (२.३.१०) से पञ्चमी हो जाती है।

(९) उप। १. हीन, निम्न—**उप हरिं सुराः** (सि० कौ०), देवता हरि से निम्नकोटि के हैं। **शक्रादय उपाच्युतम्** (बोपदेव), इन्द्र आदि भगवान् विष्णु से निम्न-स्तर के हैं। २. अधिक—**उप परार्धे हरेर्गुणाः** (सि० कौ०), हरि के गुण परार्धसंख्या से भी अधिक हैं। **यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी** (२.३.९) इस सूत्र से अधिक अर्थ के वाचक उप के योग में सप्तमी विभक्ति हो जाती है।

(१०) अति। १. अतिशय, आधिक्य—**अतिदानाद् बलिर्बद्धो नष्टो मानात् सुयोधनः। विनष्टो रावणो लौल्याद् अति सर्वत्र वर्जयेत्** (चाणक्य०)। नातिदूरे=बहुत दूर नहीं=निकट। २. अतिक्रमण में—**अति देवांस्ते मनुजाः परार्थे ये तनुत्यजः** (व्या० च०), वे मनुष्य देवताओं का अतिक्रमण कर जाते हैं जो दूसरों के लिये प्राण देते हैं। **अति देवान् कृष्णः** (सि० कौ०)। **श्रिया समानान् अति सर्वान् स्याम्** (अथर्व० ११.१.२१), मैं लक्ष्मी में समान लोगों से आगे बढ़ जाऊँ। **अतिरतिक्रमणे च** (१.४.९४) से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो कर उस के योग में द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

अब तद्धितान्त अव्ययों का वर्णन करते हैं—

[लघु०] सञ्ज्ञा-सूत्रम्—**(३६८) तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः ।१।१।३७।।**

यस्मात् सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात् ।।

अर्थः—जिस तद्धितान्त से वचनत्रयात्मिका सब विभक्तियां उत्पन्न नहीं हो सकतीं वह अव्ययसञ्ज्ञक हो।

व्याख्या—तद्धितः ।१।१। च इत्यव्ययपदम्। असर्वविभक्तिः ।१।१। अव्ययम्

---

१. प्रतिनिधि और प्रतिदान में प्रति की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो कर इस के योग में पञ्चमी हो जाती है। देखें इस व्याख्या का विभक्त्यर्थपरिशिष्ट (३८, ३९)।

२. **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या** (वा० ६१) इस वार्त्तिक से नित्यसमास हो जाता है अतः लौकिकविग्रह में 'परि' का प्रयोग नहीं हो सकता।

।१।१। (स्वरादिनिपातमव्ययम् से)। समासः—नोत्पद्यन्ते सर्वा वचनत्रयात्मिका[1] विभक्तयो यस्मात् सोऽसर्वविभक्तिः, बहुव्रीहिसमासः। अर्थः—(असर्वविभक्तिः) जिस से वचनत्रयात्मिका सम्पूर्ण विभक्तियां उत्पन्न नहीं हो सकतीं वह (तद्धितः=तद्धितान्तः[2]) तद्धितान्त (च) भी (अव्ययम्) अव्ययसंज्ञक होता है।

यथा—अतः (इस से) इस तद्धितान्त से सब विभक्तियां उत्पन्न नहीं हो सकतीं, अर्थात् 'इस से को, इस से द्वारा, इस से के लिये' इत्यादि विभक्तियों वाला व्यवहार यहां सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये यह अव्ययसंज्ञक है। अत एव—अत्रतः, तत्रतः, कुत्रतः आदि प्रयोग ठीक नहीं।

प्रशस्तं पचतीति—पचतिरूपम् [**प्रशंसायां रूपप्** (५.३.६६)], ईषद् असम्पूर्णं पचतीति पचतिकल्पम् [**ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** (५.३.६७)]। यहां इन तद्धितान्तों से भी वचनत्रयात्मिका सब विभक्तियां उत्पन्न नहीं हो सकतीं अतः इन की भी अव्ययसंज्ञा हो कर सुँप् का लुक् प्राप्त होता है—जो अत्यन्त अनिष्ट है। किञ्च वचनत्रयात्मिका सब विभक्तियां तो 'उभय' शब्द से भी उत्पन्न नहीं होतीं और यह तद्धितान्त भी है अतः इस की भी अव्ययसंज्ञा हो कर सुँब्लुक् आदि दोष प्राप्त होते हैं। इस पर उन उन तद्धितप्रत्ययों का परिगणन करते हैं जिन के अन्त में आने से अव्ययसंज्ञा होती है[3]।

[लघु०] परिगणनं कर्तव्यम्। तसिँलादयः प्राक्पाशपः। शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः। अम्। आम्। कृत्वोऽर्थाः। तसि-वती। ना-नाञौ। एतदन्तमव्ययम्। अत इत्यादि॥

अर्थः—उन तद्धित प्रत्ययों का परिगणन करना चाहिये—

[क] 'तसिँल्' से ले कर 'पाशप्' के पूर्व तक के सब प्रत्यय।

[ख] 'शस्' से ले कर समासान्तों के पूर्व तक के सब प्रत्यय।

[ग] 'अम्' और 'आम्' प्रत्यय।

[घ] 'कृत्वसुँच्' तथा उस के अर्थ वाले अन्य प्रत्यय।

---

१. **एकवचनमुत्सर्गतः करिष्यते**—इस महाभाष्य के कथन से सब विभक्तियों का एकवचन तो सब शब्दों से स्वतः सिद्ध है ही, अतः 'असर्वविभक्तिः' यह कथन व्यर्थ हो जाता है। इसलिये यहां इस का आशय यह समझना चाहिये कि जिस तद्धितान्त से सब विभक्तियों के सब वचनों की उत्पत्ति न हो उस की अव्ययसंज्ञा होती है।

२. केवलस्य तद्धितस्य प्रयोगाभावेन फलाभावात् संज्ञाविधावपि तदन्तविधिः।

३. यहां यह ध्यान रहे कि इस परिगणन के बिना दोषनिवृत्ति असम्भव है, अतः यह **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** (३६८) सूत्र व्यर्थ सा है। अत एव प्राचीन वैयाकरणों ने इस परिगणन को स्वरादिगण में सम्मिलित कर दिया है। देखें काशिकावृत्ति (१.१.३६)।

[ङ] 'तसिँ' और 'वतिँ' प्रत्यय।

[च] 'ना' और 'नाञ्' प्रत्यय।

ये तद्धितप्रत्यय जिन के अन्त में हों उन की अव्ययसंज्ञा होती है। यथा— 'अतः' (यहां एतद् शब्द से तसिँल् प्रत्यय किया गया है)।

व्याख्या—उपर्युक्त सब प्रत्यय अष्टाध्यायी के क्रम से कहे गये हैं। जिन को अष्टाध्यायी का सूत्रपाठ कण्ठस्थ है उन के लिये यह सब समझना अत्यन्त सुकर है। हम यहां इन प्रत्ययों का ससूत्र सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत करते हैं—

[क] तसिँलादयः प्राक् पाशपः ।।

(तसिँल् से लेकर पाशप् के पूर्व तक के सब प्रत्यय)

(तसिँल्)—[**पञ्चम्यास्तसिँल्** (५.३.७), **पर्यभिभ्यां च** (५.३.९)]।

इतः (स्)[1]=इस से, इस कारण से। **तस्मादितो मयान्यत्र गन्तव्यं कानने क्वचित्** (कथासरित्०)।

ततः (स्)=उस से, उस कारण से। इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः।

अतः (स्)=इस से, इस कारण से। **अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् सङ्गतं रहः** (शाकुन्तल० ५.२४)। **अतोऽहम्ब्रवीमि** (पञ्च० १)।

कुतः (स्)=किस से, किस कारण से, कहां से। **कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्** (गीता० २.२)।

यतः (स्)=जिस से, जिस कारण से, जहां से। **यतो जातानि भुवनानि विश्वा** (श्वेता० ४.४)। **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते** (तै० उप० ३.१)।

सर्वतः (स्)=सब ओर से, चहुं ओर से। **सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षि॰ शिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति** (गीता० १३.१३)। सर्वतो नगरं प्राकारः।

अन्यतः (स्)=अन्य से। **तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः** (उत्तर-राम० १.१३)।

परितः (स्)=चहुं ओर से। **वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रकीर्णाश्छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः** (शाकुन्तल० ३.२४)। परितः कृष्णं गोपाः।

अभितः (स्)=चारों ओर, दोनों ओर, निकट। **परिजनो यथाव्यापारं राजानमभितः स्थितः** (मालविका० १)। **पादपैः पत्रपुष्पाणि सृजद्भिरभितो नदीम्** (रामायण० २.९५.८)। **ततो राजाऽब्रवीद् वाक्यं सुमन्त्रमभितः स्थितम्** (रामायण)।

उभयतः (स्)=दोनों ओर। उभयतो मार्गं वृक्षाः।

नोट—उभयतः, सर्वतः, परितः, अभितः—इन के योग में द्वितीया विभक्ति का विधान है। देखें—इसी व्याख्या के तृतीयभाग का विभक्त्यर्थपरिशिष्ट (१०, ११)।

---

१. 'इतः' आदि ये तद्धितान्त अव्यय प्रायः सब प्रसिद्ध हैं अतः इन पर * यह चिह्न अङ्कित नहीं किया है।

(त्रल्)—[सप्तम्यास्त्रल् (५.३.१०)]।

सर्वत्र=सब जगह, सब में, सब स्थानों पर। **साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने** (चाणक्य०)। **अति सर्वत्र वर्जयेत्** (चाणक्य०)।

कुत्र=कहां, कहां पर। **कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः**(स्वप्न० ४)। **शङ्काभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले। प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा** (हितोप० १.२४)।

अन्यत्र=अन्य जगह, दूसरी जगह पर। **विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति** (पञ्च० १.४१)।

अत्र=यहां, यहां पर, इस पर, इस में। **यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः**(पञ्च० १.२१७)। **तन्मद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वासः कृतः**(हितोप० १)।

यत्र=जहां, जिस में। तत्र=वहां, उस में। **यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते** (हितोप० १.६९)[1]।

एकत्र=एक जगह पर, एक में। **घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निञ्च नैकत्र स्थापयेद् बुधः** (हितोप० १.११८)।

अमुत्र=उस में, परलोक में। **अनेनैवार्भकाः सर्वे नगरेऽमुत्र भक्षिताः** (कथासरित्०)। **नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः** (मनु० ४.२३९)। **प्रेत्यामुत्र भवान्तरे**— इत्यमरः।

बहुत्र=बहुतों में, बहुत स्थानों में। पूर्वत्र=पूर्व में। उत्तरत्र=अगले में। उभयत्र (दोनों में) इत्यादि।

(ह)—[**इदमो हः** (५.३.११), **वा ह च च्छन्दसि** (५.३.१३)]।

इह=यहां, इस में। **इह लोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते**(पञ्च० १.५)। **अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते** (हितोप० १.८३)।

कुह=कहां। वेद में ही प्रयोग होता है। **यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम्** (ऋ० २.१२.५)।

(अत्)—[**किमोऽत्** (५.३.१२)]।

क्व=कहां, किस स्थान पर। **क्व गताः पृथिवीपालाः ससैन्यबलवाहनाः।**

---

१. 'अत्र' और 'तत्र' के आगे भवत् (आप) शब्द का प्रयोग 'पूज्य, आदरणीय' आदि अर्थ को प्रकट करने के लिये किया जाता है। **पूज्ये तत्रभवानत्रभवांश्च भगवानपि**—इत्यभिधानचिन्तामणौ हेमचन्द्रः। जब आदरणीय पुरुष या स्त्री, वक्ता के सामने या निकट हो तो 'अत्रभवान्, अत्रभवती' आदि का, जब दूर हो तो 'तत्रभवान्, तत्रभवती' आदि का प्रयोग होता है। यथा—**अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः** (शाकुन्तल० २)। **वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये** (शाकुन्तल० १)। **असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपः, य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते**(शाकुन्तल० १)।

वियोगसाक्षिणी येषां भूमिरद्यापि तिष्ठति (हितोप० ४.६४) । **क्व वयं क्व परोक्ष-मन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः** (शाकुन्तल० २.१९)। **क्व सूर्यप्रभवो वंशः** (रघु० १.२) । क्वचित् = कहीं पर, कभी, किसी दिन । **क्वचित् पृथ्वीशय्यः क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः** (नीति० ७३)। **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति** (देवीक्षमा० १)। इसी प्रकार—क्वापि = कभी, कहीं पर ।

(दा)—[**सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा (५.३.१५)**] ।

सर्वदा = हमेशा । **स्वजनोऽपि दरिद्राणां सर्वदा दुर्जनायते** (पञ्च० १.५) ।

सदा = हमेशा । 'दा' प्रत्यय के परे रहते **सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि** (१२०६) से 'सर्व' को वैकल्पिक 'स' आदेश हो जाता है। **सदाभिमानैकधना हि मानिनः** (माघ० १.६७) ।

एकदा = एक बार, कभी । **अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम्** (हितोप० १)।

अन्यदा = अन्य समय में । **अन्यदा भूषणं पुंसां क्षमा लज्जेव योषिताम् । पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव** (माघ० २.४४) ।

कदा = कब, किस समय। **परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखः । गङ्गा ब्रूते कदागत्य मामयं पावयिष्यति** (सुभाषित०) । कदागुरोकसो भवन्तः ?। कदाचित्, कदाचन, कदापि = कभी । **कदाचित् कुपिता माता न कदाचिद् हरीतकी** (सुभाषित०)। **आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कदाचन** । (तै० उप० २.४) ।

यदा = जब । **यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्** (नीति० ७) ।

तदा = तब । **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्** (गीता० ४.७) ।

(र्हिल्)—[**इदमो र्हिल् (५.३.१६), अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् (५.३.२१)**]।

एतर्हि = इस समय, अब। **भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते विवर्त्तमानं नरदेव वर्त्मनि । कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः** (किरात० १.३२) ।

कर्हि = कब । वेद में प्रायः प्रसिद्ध **है** । लोक में—कर्हिचित् = कभी भी । **अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्** (मनु० २.४) ।

यर्हि = जब । तर्हि = तब । **सुषिरो वै पुरुषः स वै तर्ह्येव सर्वो यर्ह्याशितः** (मैत्रा० सं० ३.६.२), मनुष्य निश्चय ही भीतर से खोखला है, वह तभी पूर्ण हो जाता है जब खा कर तृप्त हो जाता है ।

(धुना)—[**अधुना (५.३.१७)**] ।

अधुना = अब, इस समय । **पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरिताम्** (उत्तर-राम० २.२७) ।

(दानीम्)—[**दानीञ्च (५.३.१८), तदो दा च (५.३.१९)**] ।

इदानीम् = अब । तदानीम् = तब । **वत्से प्रतिष्ठस्वेदानीम्** (शाकुन्तल० ४)। **नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्** (ऋ० १०.१२९.१) ।

(सद्यस् आदि निपातन)—[**सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्यु-रितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः** (५.३.२२), **द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः** (वा०)]।

सद्यः (स्) =समानेऽहनि, उसी दिन, उसी समय, फौरन, तत्काल। **सद्यो बलहरा नारी सद्यो बलकरं पयः** (चाणक्य०)। **नाऽधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव** (मनु० ४.७२)।

परुत् =पिछले वर्ष, गत वर्ष में। परुज्जातस्सुतस्तव।

परारि=गत वर्ष से पूर्व वर्ष में। परारि वृष्टिः समभूदपूर्वा।

ऐषमः (स्) =इस वर्ष में। महार्घता वृद्धिमुपागतैषमः, इस वर्ष महंगाई बढ़ गई है।

परेद्यवि=परले दिन, परसों। स तु गन्ता परेद्यवि, वह तो परसों जायेगा।

अद्य =इसी दिन, आज। **श्वःकार्यमद्य कुर्वीत** (महाभारत० १२.३२१.७३)।

पूर्वेद्युः(स्) =पूर्व दिन, गत दिन, पिछले दिन। **प्रातःकृतार्थानि यथा विरेजु-स्तथा न पूर्वेद्युरलङ्कृतानि** (भट्टि० ११.२१)।

अन्येद्युः(स्) =अन्य दिन। **अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोम-धेनुः** (रघु० २.२६)।

इतरेद्युः(स्) =अन्य दिन। अपरेद्युः(स्) =अन्य दिन। **ततोऽपरेद्युस्तं देशमा-जगाम स वीर्यवान्** (रामायण० १.११.२४)। अधरेद्युः(स्) =परले दिन, परसों। उभयेद्युः(स्) =दोनों दिनों में। उत्तरेद्युः(स्) =अगले दिन। उभयद्युः(स्) =दोनों दिनों में।

(थाल्)—[**प्रकारवचने थाल्** (५.३.२३)]।

यथा =जैसे। तथा =वैसे। **यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति। तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति** (मनु० २.२१८)। **यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्** (मनु० ६.९०)।

सर्वथा =सब प्रकार से, सब तरह से। **सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता। यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः** (उत्तरराम० ५)।

अन्यथा =अन्य प्रकार से, विपरीत। **यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा। इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते** (हितोप० प्रस्तावना ३०)।

उभयथा =दोनों प्रकार से, दोनों अवस्थाओं में। **उभयथाऽपि घटते** (विक्रमो० ३)। **छन्दस्युभयथा** (३.४.११७)।

(थमुँ)—[**इदमस्थमुँः** (५.३.२४), **किमश्च** (५.३.२५)]।

इत्थम् =इस तरह, इस प्रकार। **इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद् दीनदयालुतया-ऽवनिपालः** (नैषध० १.१.४३)।

कथम् =कैसे किस तरह, किस प्रकार। **कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः?** (हितोप० १)। **कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम्** (रघु० २.५४)। कथमपि =किसी तरह, बड़ी कठिनता से। **तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः**

कौतुकाधानहेतोः (मेघ० १.३) । **कथमपि भुवनेऽस्मिन् तादृशाः सम्भवन्ति** (मालती० २.९)। कथं कथमपि = बड़ी कठिनता से। **कथं कथमप्युत्थाय चलितः** (पञ्च० १) । कथञ्चित्, कथञ्चन = किसी तरह, बड़ी मुश्किल से। **कथञ्चिदीशा मनसां बभूवुः** (कुमार० ३.३४) । **न लोकवृत्तं वर्त्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन** (मनु० ४.११) ।

(था) — [**था हेतौ च च्छन्दसि** (५.३.२६)] ।

कथा = किस कारण से। वेद में ही प्रयोग होता है। **कथा विधात्यप्रचेताः** (ऋ० १.१२०.१), अज्ञानी कैसे कार्य कर सकता है?

(अस्तातिँ) — **दिक्छब्देभ्यः सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** (५.३.२७) ।

पुरस्तात् = सामने, पूर्व में, पूर्व से, पूर्व (दिशा, देश या काल), **गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत् पुरस्तादनुपेक्षणीयम्** (रघु० २.४४) । **रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्तात्** (मेघ० १.१५)। **पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्त-रान्** (परिभाषा)। इसी प्रकार—

परस्तात् = आगे, परे, दूसरी ओर। **वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्** (श्वेता० ३.४) । **परस्ताज्ज्ञायत एव** (शाकुन्तल० १) ।

अधस्तात् = नीचे, नीचे की ओर। **धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्य-धर्मेण** (सांख्यका० ४४) । **तस्याधस्ताद् वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु** (उत्तरराम० २.२५) ।

(अतसुँच्) — [**दक्षिणोत्तराभ्यामतसुँच्** (५.३.२८), **विभाषा परावराभ्याम्** (५.३.२९)] ।

दक्षिणतः (स्) = दक्षिण में, दक्षिण से, दक्षिण (दिशा और देश केवल दो के लिये)। **उत्तराहि वसन् रामः समुद्राद् रक्षसां पुरीम् । अवैल्लवणतोयस्य स्थितां दक्षिणतः कथम्** (भट्टि० ८.१०७)। इसी प्रकार—उत्तरतः = उत्तर में, उत्तर से, उत्तर। परतः = परे, पर से, पर। अवरतः = पीछे से। ये दिशा, देश और काल तीनों के लिये प्रयुक्त होते हैं।

(अस्तातेर्लुक्) — [**अञ्चेर्लुक्** (५.३.३०)] ।

प्राक् = पहले, आगे, पूर्व में, पूर्व से, पूर्व (दिशा, देश या काल)। **प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसम्** (हितोप० १.८१) । **प्राङ् नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते** (मनु० २.२९) । **प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः प्राङ्मुख उपविश्य महता यत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म, तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थेन भवितुं किम्पुनरियता सूत्रेण** (महाभाष्य १.१.१) । **प्राग्गामि पुण्यं नृणाम्** (हेमचन्द्र), मनुष्यों का पुण्य आगे चलता है। इसी प्रकार प्रत्यक् = विपरीत दिशा। आदि शब्द जानने चाहियें।

(रिल्, रिष्टात्) — [**उपर्युपरिष्टात्** (५.३.३१)] ।

उपरि = ऊपर (दिशा, देश, काल) । **अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात**

विद्याधरहस्तमुक्ता (रघु० २.६०)। उपर्युपरि=ऊपर ऊपर। **उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति** (हितोप० २.२)।

उपरिष्टात्=ऊपर (दिशा, देश, काल,)। **संजातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधः** (वैराग्य० ११०)। **इत्युपरिष्टाद् व्याख्यातम्।**

(आति)—[**पश्चात्** (५.३.३२)]।

पश्चात्=पीछे, अस्तात्यर्थे। **लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्** (नीति० ४६)। **गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः** (शाकुन्तल० १.३३)। **पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रम्** (उत्तरराम० ४.२६)। **पश्चात्तापः।**

(अ, आ,)—[**पश्च पश्चा च च्छन्दसि** (५.३.३३)]।

पश्च=पीछे। पश्चा=पीछे। वेद में ही प्रयुक्त होते हैं।

(आतिँ)—[**उत्तराधरदक्षिणादातिः** (५.३.३४)]।

उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात्। अस्ताति वाला अर्थ। उत्तराद् वसति (उत्तरस्यां दिशि वसतीत्यर्थः)। उत्तरादागतः। उत्तराद् रमणीयम् (काशिका)। इसी प्रकार —अधराद्वसति, दक्षिणाद्वसति आदि।

(एनप्)—[**एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** (५.३.३५)]।

उत्तरेण, अधरेण, दक्षिणेन। सब जगह 'अस्ताति' वाला अर्थ, केवल पञ्चमी का ग्रहण नहीं। इस के योग में **एनपा द्वितीया** (२.३.३१) द्वारा द्वितीया विभक्ति का विधान है—**तत्रागारं धनपतिगृहान् उत्तरेणास्मदीयम्** (मेघ० २.१२), हमारा घर कुबेर के भवन के निकट उत्तर में है। **दण्डकां दक्षिणेनाहं सरितोऽद्रीन् वनानि च** (भट्टि० ८.१०८)। **उत्तरेण स्रवन्तीम्** (मालती० ६.२४)। **दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् आलाप इव श्रूयते** (शाकुन्तल० १)।

(आच्)—[**दक्षिणादाच्** (५.३.३६)]।

दक्षिणा=दक्षिण में, आदि। अस्तात्यर्थे। दक्षिणा ग्रामात् (सि० कौ०), ग्राम के दक्षिण में। आच्प्रत्ययान्त के योग में **अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते** (२.३.२९) सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है।

(आहि)—[**आहि च दूरे** (५.३.३७), **उत्तराच्च** (५.३.३८)]।

दक्षिणाहि=दक्षिण में। उत्तराहि=उत्तर में। अस्तात्यर्थे। दक्षिणाहि ग्रामात्, उत्तराहि ग्रामात् (सि० कौ०), ग्राम से दूर दक्षिण में, ग्राम से दूर उत्तर में। इस के योग में भी पूर्ववत् पञ्चमी विभक्ति होती है। **उत्तराहि वसन् रामः समुद्रात्** (भट्टि० ८.१०७), समुद्र से दूर उत्तर में रहते हुए राम ने।

(असिँ)—[**पूर्वाधरावराणामसिँ पुरधवश्चैषाम्** (५.३.३९)]।

पुरः (स्)=आगे, सामने, पूर्व में, पूर्व से, पूर्व (अस्तात्यर्थे)। **अमुं पुरः पश्यसि देवदारुम्** (रघु० २.३६)। **तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः** (शाकुन्तल० ७.३०); **तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः** (मेघ० १.३)।

अधः (स्) = नीचे, नीचे में, नीचे से (अस्तात्यर्थे)। इस का पहले स्वरादियों में व्याख्यान किया जा चुका है।

अवः (स्) = न्यून, निम्न, बाह्य आदि (अस्तात्यर्थे)। इस का भी पहले स्वरादियों में व्याख्यान कर चुके हैं।

(धा)—[**सङ्ख्याया विधार्थे धा** (५.३.४२)]।

एकधा = एक प्रकार से। न एकधा = अनेकधा, नैकधा। **जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा** (गीता० ११.१३)। **अधुनीत खगः स नैकधा** (नैषध० २.२)।

द्विधा = दो प्रकार, दो प्रकार से। **द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्** (मनु० १.३२)। **द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः** (रघु० १.३९)।

त्रिधा = तीन प्रकार से। **एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा** (कुमार० ७.४४)।

चतुर्धा = चार प्रकार से। **चतुर्धा विभजात्मानम् आत्मनैव दुरासदे** (रामायण० ७.८६.११)। इसी प्रकार—पञ्चधा, षड्धा, षोढा, सप्तधा, अष्टधा, नवधा, बहुधा आदि।

(ध्यमुँञ्)—[**एकाद्धो ध्यमुँञन्यतरस्याम्** (५.३.४४)]।

ऐकध्यम् = एक बार। **ऐकध्यं भुङ्क्ते** (काशिका)।

(धमुँञ्)—[**द्वित्र्योश्च धमुँञ्** (५.३.४५)]।

द्वैधम् = दो प्रकार। **श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात् तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ** (मनु० २.१४)।

त्रैधम् = तीन प्रकार। **त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः** (माघ० १४.६१)।

(एधाच्)—[**एधाच्च** (५.३.४६)]।

द्वेधा = दो प्रकार से। **वेधाँ द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च। तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः** (कुवलया०)।

त्रेधा = तीन प्रकार से। **त्रेधा विभज्य रचितां वहसेऽद्य वेणीम्** (चम्पूभारत ६.३०)। **तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने** (रघु० १०.१६)।

अब इस के आगे **याप्ये पाशप्** (५.३.४७) सूत्र से पाशप् प्रत्यय का विधान किया जाता है। **तसिँलादयः प्राक् पाशपः** — में पाशप् से पूर्व का ग्रहण होने से पाशप् प्रत्ययान्त की अव्ययसंज्ञा नहीं होती। अत एव — याप्यो (निन्दितो) वैयाकरणः = 'वैयाकरणपाशः' इत्यादियों में सुँप् का लुक् नहीं होता, क्योंकि सुँब्लुक् तो अव्यय से परे ही हुआ करता है। देखें—**अव्ययादाप्सुँपः** (३७२)।

[ख] शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः ॥

(शस् से ले कर समासान्तों से पूर्व तक के प्रत्यय)

(शस्)—[**बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** (५.४.४२)]।

बहुशः (स्) = बहुतों को, बहुतों से, बहुतों के लिये आदि। प्रत्येक कारक में प्रयोग होता है। बहूनि ददातीति बहुशो ददाति। बहुभिर्ददातीति बहुशो ददाति। बहुभ्यो

ददातीति बहुशो ददाति। इसी तरह अन्य कारकों में भी समझ लेना चाहिये। एवम् —अल्पशः। भूरिशः। स्तोकशः। आदि। एकशः, द्विशः, त्रिशः, शतशः, सहस्रशः— आदि में **सङ्ख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्** (५.४.४३) द्वारा वीप्सा में शस् प्रत्यय होता है। एकशो ददाति—एक एक करके देता है। द्विशो ददाति—दो दो देता है। न एकशः— अनेकशः = अनेक बार, **अनेकशो निर्जितराजकस्त्वम्** (भट्टि० २.५२)। इसी प्रकार— पादशो ददाति, कार्षापणशो ददाति। आदि।

(तसिँ)—[**प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः** (५.४.४४)]।

प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति, प्रद्युम्न वासुदेव का प्रतिनिधि है। **अभिमन्युरर्जुनतः प्रति**, अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है। कर्मप्रवचनीय 'प्रति' के योग में जो पीछे (पृष्ठ ५६४ पर) पञ्चमी कह चुके हैं उसी का यहां ग्रहण है।

(तसिँ)—[**आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्** (वा०)]।

इस वार्त्तिकद्वारा सब विभक्तियों के अर्थ में तसिँ प्रत्यय होता है अतः इसे 'सार्वविभक्तिकस्तसिः' कहा जाता है। यथा—आदौ इति आदितः=आदि में। **तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्** (१.२.३२), आदित आदावित्यर्थः। मध्य इति मध्यतः। **अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः**(महाभारते यक्षोपाख्याने), वृत्तेनेति वृत्ततः। **विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्त्रियाणां तु वीर्यतः** (मनु० २.१५५), ज्ञानेनेति ज्ञानतः, वीर्येणेति वीर्यतः। **अस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि** (शाकुन्तल० ७), नाम्ना इति नामतः।

(तसिँ)—[**अपादाने चाहीयरुहोः** (५.४.४५)]।

चौरादिति चौरतो बिभेति। अध्ययनादिति अध्ययनतः पराजयते।

(तसिँ)—[**अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः** (५.४.४६)]।

वृत्ततोऽतिगृह्यते। चारित्रतोऽतिगृह्यते। अन्यानतिक्रम्य वृत्तेन चारित्रेण वा गृह्यत इत्यर्थः। वृत्ततो न व्यथते। वृत्तेन न चलतीत्यर्थः। वृत्ततः क्षिप्तः। वृत्तेन निन्दित इत्यर्थः। इत्यादि।

(च्विँ)- [**कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** (५.४.५०)]।

अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोतीति शुक्ली[1] करोति। शुक्ली भवति। शुक्ली स्यात्। **अस्मद्विना मा भृशम् उन्मनी[2] भूः** (किरात० ३.३९)।

(सातिँ)—[**विभाषा सातिँ कार्त्स्न्ये** (५.४.५२) आदि]।

कृत्स्नम् अनुदकम् उदकं सम्पद्यत इति उदकी भवति, उदकसाद् भवतीति वा। वर्षासु कृत्स्नं लवणपिण्डमुदकसाद् भवति। अग्नी[3] भवति, अग्निसाद् भवति शस्त्रम्।

---

१. च्वौ, तस्य सर्वापहारलोपे, प्रत्ययलक्षणेन तमाश्रित्य **अस्य च्वौ** (१२४२) इति अकारस्य ईकारः। शुक्लीति पृथक् पदमव्ययम्। अव्ययत्वात् सुपो लुक्।

२. अनुन्मना उन्मना भवतीति विग्रहः। च्वौ सर्वापहारलोपे, **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहो-रजसां लोपश्च** (५.४.५१) इति सकारलोपे, अस्य ईत्वे च कृते रूपसिद्धिः।

३. च्व्यन्तमेतद्रूपम्। **च्वौ च** (१२४५) इति दीर्घः।

(त्रा)—[**देये त्रा च** (५.४.५५), **तदधीनवचने** (५.४.५४) आदि]।

ब्राह्मणत्रा करोति। ब्राह्मणाधीनं देयं करोतीत्यर्थः। राजसात् करोति। राजाधीनं करोतीत्यर्थः। **राजा स यज्वा विबुधव्रजत्रा कृत्वाध्वराज्योपमयैव राज्यम्** (नैषध० ३.२४)।

(डाच्)—[**अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** (५.४.५७) इत्यादि]।

पटपटा करोति (पटत् इस प्रकार की ध्वनि करता है)। दमदमा करोति। इन की सिद्धि इस व्याख्या के चतुर्थभागस्थ (१२४६) सूत्र पर देखें।

इस के बाद समासान्त आरम्भ हो जाते हैं। तदन्तों की अव्ययसंज्ञा नहीं होती। यथा—व्यूढोरस्कः।

[ग] अम्। आम्—अम् और आम् प्रत्यय।

(अमुँ)—[**अमुँ च च्छन्दसि** (५.४.१२)]।

प्रतरं न आयुः (ऋ० ४.१२.६)। वेद में ही प्रयोग होता है।

(आमुँ)—[**किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** (५.४.११)]।

किन्तराम्। किन्तमाम्। पचतितराम्। पचतितमाम्। इस का विवेचन इस व्याख्या के चतुर्थभागस्थ (१२२०) सूत्र पर देखें।

[घ] कृत्वोऽर्थाः—कृत्वसुँच् तथा उस के अर्थ वाले प्रत्यय।

(कृत्वसुँच्)—[**संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुँच्** (५.४.१७)]।

पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते (पांच बार खाता है)। सप्तकृत्वः=सात बार।

(सुँच्)—[**द्वित्रिचतुर्भ्यः सुँच्** (५.४.१८)]।

द्विर्भुङ्क्ते (दो बार खाता है)। त्रिस्=तीन बार। चतुस्=चार बार। **त्रिराचमेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्** (मनु० २.६०)।

(सुँच्)—[**एकस्य सकृच्च** (५.४.१९)]।

सकृत्[1]=एक बार। **सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते। सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्** (मनु० ९.४७)। न सकृत् असकृत्=बार बार। **असकृदेकरथेन तरस्विना** (रघु० ९.२३)।

(धा)—[**विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले** (५.४.२०)]।

बहुधा=थोड़े २ अन्तर पर बहुत बार। **बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते** (काशिका)। **बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते** (काशिका)।

[ङ] तसिँ-वती—तसिँ और वतिँ प्रत्यय।

(तसिँ)—[**तेनैकदिक्** (४.३.११२), **तसिँश्च** (४.३.११३)]।

सुदामतः (स्)=जो सुदामन् पर्वत (या मेघ) की दिशा में हो। हिमवत्तः (स्)=जो हिमालय की दिशा में हो। पीलुमूलतः (स्)=जो पीलुमूल की दिशा में हो। ध्यान रहे कि यहां का तसिँ प्रत्यय पीछे शस्प्रभृति में आये तसिँप्रत्यय से नितान्त भिन्न है।

---

१. एकशब्दात्सुँचि एकस्य च सकृदादेशे संयोगान्तलोपे रूपसिद्धिः।

(वतिँ)—[**तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** (५.१.११४)]।

ब्राह्मणेन तुल्यं वर्तते इति ब्राह्मणवद् वर्त्तते। ब्राह्मण जैसा व्यवहार करता है। **प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्** (चाणक्य०)। गुरुवद् गुरुपुत्रे वर्तितव्यम्। इसी प्रकार—यद्वत्=जैसे, तद्वत्=वैसे, यथावत्=ठीक तरह। आदि।

(वतिँ)—[**तत्र तस्येव** (५.१.११५)]।

मथुरायामिव स्रुघ्ने प्राकारः—मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः। मथुरा में जैसे प्राकार है वैसे स्रुघ्न में है। **यज्ञदत्तस्येव**—यज्ञदत्तवद् देवदत्तस्य दन्ताः। **यज्ञदत्त के** दान्तों की तरह देवदत्त के दान्त हैं।

(वतिँ)—[**तदर्हम्** (५.१.११६)]।

राजानमर्हतीति—राजवदस्य पालनं क्रियताम्। ऋषिवदस्य समादरः कर्त्तव्यः।

[च] **ना-नाञौ**—ना और नाञ् प्रत्यय।

(ना, नाञ्)—[**विनञ्भ्यां ना-नाञौ न सह** (५.२.२७)]।

विना=बग़ैर। **विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति** (पञ्च० १.४१)।

नाना=बग़ैर। **नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा** (गणरत्न०)। इन दोनों का उल्लेख पीछे स्वरादिगण में हो चुका है। विशेष वक्तव्य वहीं देखें।

यहां पर तद्धितान्त अव्ययों का वर्णन समाप्त होता है। अब अग्रिम दो सूत्रों द्वारा कृदन्त अव्ययों को प्रस्तुत करते हैं—

[लघु०] सञ्ज्ञा-सूत्रम्—**(३६९) कृन्मेजन्तः।१।१।३८॥**

कृद् यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात्। स्मारं स्मारम्। जीवसे। पिबध्यै॥

अर्थः—मकारान्त कृत्प्रत्यय या एजन्त कृत्प्रत्यय जिस के अन्त में हो उस की अव्ययसञ्ज्ञा हो जाती है।

व्याख्या—कृत्।१।१। मेजन्तः।१।१। अव्ययम्।१।१। (**स्वरादिनिपातमव्ययम्** से)। समासः—म् च एच् च—मेचौ, इतरेतरद्वन्द्वः। मेचौ अन्तौ यस्य स मेजन्तः, बहुव्रीहिसमासः। सौत्रभत्वात्कुत्वाभावः। ध्यान रहे कि केवल कृत्प्रत्यय का प्रयोग नहीं हो सकता अतः संज्ञाविधि में भी तदन्तविधि हो कर 'कृत्' से कृदन्त का ग्रहण होता है। अर्थः—(मेजन्तः) मकारान्त या एजन्त (कृत्=कृदन्तः) जो कृत्, वह जिस के अन्त में हो ऐसा शब्द (अव्ययम्) अव्ययसंज्ञक होता है।

णमुँल्, कमुँल्, खमुँञ्, तुमुँन्—ये चार प्रत्यय ही कृत्प्रत्ययों में मान्त होते हैं। इन के उदाहरण क्रमशः यथा—

णमुँल्—स्मारं स्मारम्। **स्मृ चिन्तायाम्** (भ्वा० प०) धातु से **आभीक्ष्ण्ये णमुँल् च** (८८५) सूत्रद्वारा णमुँल् प्रत्यय, अनुबन्धलोप तथा **अचो ञ्णिति** (१८२) से वृद्धि और रपर करने से—स्मारम्। 'स्मारम्' यह कृदन्त है, इस के अन्त में णमुँल् (अम्) यह कृत्प्रत्यय किया गया है। अतः प्रकृतसूत्र से अव्ययसंज्ञा होने के कारण

कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वेन उत्पन्न सुँप् का **अव्ययादाप्सुँपः** (३७२) से लुक् हो जाता है। अब **नित्यवीप्सयोः** (८८६) से द्वित्व हो कर 'स्मारं स्मारम्' प्रयोग सिद्ध होता है। इसीप्रकार—ध्यायं ध्यायम्[1]। **ध्यायं ध्यायं परं ब्रह्म स्मारं स्मारं गुरोर्गिरः। सिद्धान्तकौमुदीव्याख्यां कुर्मः प्रौढमनोरमाम्** (प्रौढमनोरमादौ), परब्रह्म का बार बार ध्यान कर तथा गुरुजी के वचनों का बार बार स्मरण कर मैं (भट्टोजिदीक्षित) सिद्धान्त-कौमुदी की व्याख्या प्रौढमनोरमा की रचना करता हूं।

कमुँल्—यह प्रत्यय वेद में ही प्रयुक्त होता है। **अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्** (मैत्रा० सं० १.६.४), विभाजम्=विभक्तुमित्यर्थः। यहां विपूर्वक भज् धातु से णमुँल् प्रत्यय किया गया है। **अपलुपं नाशक्नोत्** (मैत्रा० सं० १.६.५), अपलुपम्=अपलोप्तुमित्यर्थः। अपपूर्वक लुप् धातु से कमुँल् प्रत्यय किया गया है। विभाजम् और अपलुपम् दोनों के अन्त में मकारान्त कृत् है अतः इन की प्रकृतसूत्र से अव्ययसंज्ञा हो कर **अव्ययादाप्सुँपः** (३७२) से सुँप् का लुक् हो जाता है।

खमुँञ्—चोरङ्कारम् आक्रोशति (तुम चोर हो—ऐसा कह कर गाली देता है)। यहां 'कृ' धातु से **कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुँञ्** (३.४.२५) सूत्र द्वारा खमुँञ् प्रत्यय किया गया है। मकारान्त कृत् प्रत्यय अन्त में होने के कारण 'चोरङ्कारम्' की अव्ययसंज्ञा हो कर सुँब्लुक् हो जाता है।

तुमुँन्—पठितुम् (पढ़ने के लिये), भवितुम् (होने के लिये)। इन में **तुमुँण्ण्वुलौ०** (८४९) आदि सूत्रों से तुमुँन् (तुम्) प्रत्यय किया जाता है। मकारान्त कृत् प्रत्यय अन्त में होने के कारण अव्ययसंज्ञा हो कर इन से परे सुँप् का लुक् हो जाता है। अनुवादोपयोगी तीन सौ से अधिक सार्थ तुमुँन्प्रत्ययान्तों का एक बृहत्संग्रह इस व्याख्या के तृतीयभागस्थ (८५०) सूत्र पर दिया गया है वहीं देखें।

ध्यान रहे कि णमुँल् आदि चारों कृत्प्रत्यय अनुबन्धों का लोप हो जाने से मकारान्त हो जाते हैं। यथा—णमुँल्=अम्, कमुँल्=अम्, खमुँञ्=अम्, तुमुँन्=तुम्।

कृत्प्रत्ययों में एजन्तप्रत्यय (एकारान्त, ओकारान्त, ऐकारान्त, औकारान्त) **तुमर्थे से-सेन्०** (३.४.९) आदि सूत्रों से वेद में विधान किये जाते हैं। तदन्तों की भी प्रकृतसूत्र से अव्ययसंज्ञा हो जाती है। अव्ययसंज्ञा का प्रयोजन सुँब्लुक् आदि है। तथाहि—

१. से—वक्षे (कहने के लिये)।[2]
२. सेन् (से)=एषे (जाने के लिये)।
३. असे—जीवसे (जीने के लिये)।
४. असेन् (असे)—पूर्वोक्त उदाहरण।

---

१. इन की पूरी सिद्धि इस व्याख्या के तृतीयभागस्थ (८८६) सूत्र पर देखें।

२. **तुमर्थे से-सेन्-असे-असेन्-क्से-कसेन्-अध्यै-अध्यैन्-कध्यै-कध्यैन्-शध्यै-शध्यैन्-तवै-तवेङ्-तवेनः** (३.४.९)—वेद में तुमुँन् प्रत्यय के अर्थ में धातु से परे से, सेन्

५. क्से (से)—प्रेषे (भेजने के लिये)।
६. कसेन् (असे)—श्रियसे (श्रयितुम्)।
७. अध्यै पृणध्यै (भरने के लिये)।
८. अध्यैन् (अध्यै)—पूर्वोक्त उदाहरण।
९. कध्यै (अध्यै)--आहुवध्यै (आह्वातुम्)।
१०. कध्यन् (अध्यै)--पूर्वोक्त उदाहरण।
११. शध्यै (अध्यै)—मादयध्यै (मादयितुम्)।
१२. शध्यैन् (अध्यै)—पिबध्यै (पीने के लिये)।
१३. तवै—दातवै (देने के लिये)।
१४. तवेङ् (तवे)—सूतवे (जनने के लिये)।
१५. तवेन् (तवे)--कर्तवे (करने के लिये)।
१६. कै प्रत्ययान्त—प्रयै (जाने के लिये)।[1]
१७. इष्यै ,, —रोहिष्यै (रोढुम्)।
१८. ,, ,, —अव्यथिष्यै (अव्यथनाय)
१९. के प्रत्ययान्त—दृशे (देखने के लिये)।[2]
२०. ,, —विख्ये (विख्यातुम्)।
२१. तवै—न म्लेच्छितवै (अपशब्द नहीं बोलने चाहिये)।[3]
२२. केन् (ए)—अवगाहे (अवगाहितव्यम्)।
२३. एश् प्रत्ययान्त—अवचक्षे (अवख्यातव्यम्)।[4]

अब ग्रन्थकार अन्य कृदन्त अव्ययों का निरूपण करते हैं—

[लघु०] सञ्ज्ञा-सूत्रम्—(३७०) **क्त्वा-तोसुँन्-कसुँनः** ।१।१।३९।।

एतदन्तमव्ययम् । कृत्वा । उदेतोः । विसृपः ।।

अर्थः—क्त्वा, तोसुँन् और कसुँन् प्रत्यय जिस के अन्त में हो वह भी अव्ययसंज्ञक होता है।

व्याख्या—क्त्वा-तोसुँन्-कसुँनः ।१।३। अव्ययानि ।१।३। (**स्वरादिनिपातमव्ययम्** से वचनविपरिणाम द्वारा)। केवल प्रत्यय की संज्ञा का कुछ भी प्रयोजन न होने से तदन्तविधि हो जाती है। अर्थः—(क्त्वा-तोसुँन्-कसुँनः) क्त्वा, तोसुँन् या कसुँन् प्रत्यय जिन के अन्त में हों वे शब्द (अव्ययानि) अव्ययसंज्ञक होते हैं। उदाहरण यथा—

आदि पन्द्रह प्रत्यय होते हैं। इन प्रत्ययों में अनुबन्धभेद स्वरभेद के लिये या गुणवृद्धिनिषेध आदि के लिये समझना चाहिये।

१. **प्रयै-रोहिष्यै-अव्यथिष्यै** (३.४.१०)—तुमुँन् प्रत्यय के अर्थ में प्रयै, रोहिष्यै और अव्यथिष्यै ये तीन कृदन्त शब्द वेद में निपातित किये जाते हैं।

२. **दृशे विख्ये च** (३.४.११)—तुमुँन् प्रत्यय के अर्थ में दृशे और विख्ये ये दो कृदन्त शब्द वेद में निपातित किये जाते हैं।

३. **कृत्यार्थे तवै-केन्-केन्य-त्वनः** (३.४.१४)—कृत्यप्रत्ययों के अर्थ में वेद में तवै, केन्, केन्य और त्वन् प्रत्यय धातु से परे होते हैं। तवै और केन् प्रत्यय एजन्त कृत्प्रत्यय हैं अतः एतदन्तों की ही अव्ययसंज्ञा होती है अन्यदन्तों की नहीं।

४. **अवचक्षे च** (३.४.१५)—कृत्यप्रत्यय के अर्थ में वेद में 'अवचक्षे' यह कृदन्त शब्द निपातित किया जाता है।

क्त्वा (त्वा)—कृत्वा, पठित्वा, भूत्वा, गत्वा आदि । यहां **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** (८७९) सूत्र से क्त्वा प्रत्यय हो जाता है । अतः क्त्वाप्रत्ययान्त होने के कारण इन की प्रकृतसूत्र से अव्ययसंज्ञा हो जाती है । अव्ययसंज्ञा का प्रयोजन सुँब्लुक् (३७२) आदि होता है ।

तोसुँन् (तोस्)—उदेतोः (उदय होने तक), प्रवदितोः (बोलने तक), प्रचरितोः (चलने तक) आदि । यहां **भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुँन्** (३.४.१६) सूत्र द्वारा तोसुँन् (तोस्) प्रत्यय हो जाता है । अतः इन की अव्ययसंज्ञा हो जाती है ।

कसुँन् (अस्)—विसृपः, आतृदः । यहां **सृपितृदोः कसुँन्** (३.४.१७) सूत्र-द्वारा कसुँन् प्रत्यय हो जाता है । अतः प्रकृतसूत्र से तदन्तों की अव्ययसंज्ञा हो जाती है ।

क्त्वा, तोसुँन् और कसुँन् इन तीन प्रत्ययों में तोसुँन् और कसुँन् केवल वेद में तथा क्त्वा प्रत्यय लोक और वेद दोनों में समानरूप से प्रयुक्त होता है । ये तीनों प्रत्यय भी कृत्संज्ञक हैं ।

अब अव्ययीभावसमास की भी अव्ययसंज्ञा करते हैं—

[लघु०] संज्ञा-सूत्रम्—**(३७१) अव्ययीभावश्च ।१।१।४० ॥**

अधिहरि ॥

अर्थः - अव्ययीभावसमास भी अव्ययसंज्ञक होता है ।

व्याख्या—अव्ययीभावः ।१।१। च इत्यव्ययपदम् । अव्ययम् ।१।१। (**स्वरादिनिपातमव्ययम्** से) । अर्थः—(अव्ययीभावः) अव्ययीभावसमास (च) भी (अव्ययम्) अव्ययसंज्ञक होता है ।

अव्ययीभावसमास का विवेचन इस व्याख्या के समासप्रकरण में किया गया है वहीं देखें । उदाहरण यथा—

अधिहरि [हरौ—इत्यधिहरि, हरि में] । यहां विभक्त्यर्थ में **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि०** (९०८) सूत्र द्वारा अव्ययीभावसमास हो कर समासकार्य करने पर 'अधिहरि' शब्द निष्पन्न होता है[1] । इस की प्रकृतसूत्र से अव्ययसंज्ञा हो जाती है अतः समासत्व के कारण प्रातिपदिक से उत्पन्न सुँ—सुँप् का **अव्ययादाप्सुँपः** (३७२) से लुक् हो जाता है । इसी प्रकार—'यथाशक्ति' आदियों में समझ लेना चाहिये ।

अब अव्ययसंज्ञा करने के मुख्य प्रयोजन सुँब्लुक् का प्रतिपादन करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—**(३७२) अव्ययादाप्सुँपः ।२।४।८२॥**

अव्ययाद्विहितस्य आपः सुँपश्च लुक् । तत्र शालायाम् ॥

---

१. इस की सम्पूर्ण सिद्धि अव्ययीभावसमास प्रकरण में देखें ।

अर्थः—अव्यय से विधान किये गये **आप्** (टाप् आदि स्त्रीप्रत्ययों) तथा **सुँप्** प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ।

व्याख्या—अव्ययात् ।५।१। आप्सुँपः ।६।१। लुक् ।१।१। (**ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से) । आप् च सुँप् च आप्सुँप्, तस्य=आप्सुँपः, समाहारद्वन्द्वः । **अर्थः** —(अव्ययात्) अव्यय से विधान किये गये (आप्सुँपः) आप् और सुँप् प्रत्यय का (लुक्) लुक् हो जाता है । आप् से टाप्, डाप्, चाप् आदि स्त्रीप्रत्ययों का तथा सुँप् से सुँ, औ, जस् आदि का ग्रहण होता है । उदाहरण यथा—

तत्र शालायाम् (उस शाला में) । यहां 'तत्र' यह अव्यय 'शाला' इस स्त्रीलिङ्गी पद का विशेषण है अतः इस से **अजाद्यतष्टाप्** (१२४५) द्वारा टाप् प्रत्यय हो कर प्रकृतसूत्र से लुक् हो जाता है ।

सुँप् का लुक् तो प्रत्येक अव्यय से होता ही है—च+सुँ=च । वा+सुँ= वा । इस सूत्र पर विशेष विचार सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्याओं में देखें ।

अब अव्यय का लक्षण करने के लिये एक प्राचीन श्लोक (गोपथब्राह्मण की ब्रह्मपरक श्रुति) उद्धृत करते हैं—

[लघु०] सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

अर्थः—जो तीनों लिङ्गों, सब विभक्तियों और सब वचनों में विकार को प्राप्त नहीं होता—एक जैसा रहता है—बदलता नहीं, वह अव्यय कहाता है ।

व्याख्या—अव्ययम् यह अन्वर्थ अर्थात् अर्थानुसारिणी संज्ञा है । नास्ति व्ययः =विनाशः=विकृतिर्यस्य यस्मिन् वा तद् अव्ययम् । जिस में किसी प्रकार की विकृति न हो—प्रत्येक अवस्था में एक जैसा स्वरूप रहे उसे अव्यय कहते हैं । इसी लक्षण को ऊपर के श्लोक में और अधिक परिष्कृत किया गया है । श्लोक में 'विभक्ति' से तात्पर्य कर्म आदि कारक और 'वचन' से एकत्व, द्वित्व, बहुत्व का ग्रहण समझना चाहिये ।

अब 'अव' और 'अपि' उपसर्गों के विषय में भागुरि आचार्य का मत दर्शाते हैं—

[लघु०] वष्टि[1] भागुरिरल्लोपम् अवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥

वगाहः । अवगाहः । पिधानम् । अपिधानम् ॥

अर्थः—भागुरि आचार्य 'अव' और 'अपि' उपसर्गों के (आदि) अकार का लोप चाहते हैं तथा हलन्त शब्दों से स्त्रीत्वबोधक 'आप्' प्रत्यय भी विधान करना चाहते हैं ।

---

१. वशेश्छान्दसत्वेन प्रयोगश्चिन्त्य इति नागेशः । एतज्ज्ञापकाद् भाषायामप्यस्य प्रयोग इति तत्त्वबोधिनी-बालमनोरमाकारादयः ।

व्याख्या—भागुरि आचार्य सम्भवतः पाणिनि से पूर्ववर्त्ती वैयाकरण हो चुके हैं। जगदीश तर्कालङ्कार ने शब्दशक्तिप्रकाशिका में उन के अनेक मन्तव्यों का उल्लेख किया है। परन्तु अष्टाध्यायी में पाणिनि ने उन के मत का कहीं उल्लेख नहीं किया। भागुरि के मत में 'अव' और 'अपि' उपसर्गों के आदि अकार का लोप हो जाता है[1]। अन्य आचार्यों के मत में न होने से विकल्प सिद्ध हो जाता है। उदाहरण यथा—

(१) वगाहः, अवगाहः (स्नान आदि)। अवपूर्वक गाह् (**गाहूँ विलोडने,** भ्वा० आ०) धातु से भाव आदि में घञ् प्रत्यय हो कर अनुबन्धलोप करने से 'अवगाहः' प्रयोग सिद्ध होता है। परन्तु भागुरि आचार्य के मत में 'अव' उपसर्ग के अकार का लोप हो कर—'वगाहः' प्रयोग बनता है। हमें सब आचार्य मान्य हैं अतः लोक में 'अवगाहः, वगाहः' दोनों प्रयोग मान्य हैं। इसी प्रकार शिष्टप्रयोगानुसार अन्य प्रत्ययों में भी समझ लेना चाहिये। साहित्यगत कुछ उदाहरण यथा—**सुभगसलिलाऽवगाहाः** (शाकुन्तल० १.३)। **जलावगाहक्षणमात्रशान्ता** (रघु० ५.४७)। **दग्धानामवगाहनाय विधिना रम्यं सरो निर्मितम्** (शृङ्गारतिलक)। **पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य** (कुमार० १.१)। **तमोऽपहन्त्री तमसां वगाह्य** (रघु० १४.७६)। **सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः कटूकुर्वन्** (शिवराज० २)।

इसी प्रकार—अवतंसः—वतंसः (कर्णभूषण या शिरोभूषण, श्रेष्ठ)। **यैर्वतंसकुसुमैः प्रियमेताः** (माघ० १०.६७)। **चित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते हंसकुलावतंस** (नैषध० ३.९४)। अवस्था—वस्था (हालत, दशा)। **कुम्भोऽप्येतां पितुरुपनतां वीक्ष्य वस्थां वपुष्मान्** (महावीर० ६.४४)। **अवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च** (नीति० ३६)। अवक्रयः – वक्रयः (मूल्य)। अवक्रीयतेऽनेनेति अवक्रयः, **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** (८७२) इति घः। **मूल्यं वस्नोऽप्यवक्रय** इत्यमरः। भागुरिमतेऽकारलोपे वक्रयः। **मूल्ये वस्नाऽर्घ-वक्रया** इति हेमचन्द्रः। अवक्रमः—वक्रमः (आप्टे०)।

(२) पिधानम्, अपिधानम् (ढांपना या ढक्कन)। अपिपूर्वक धा (**डुधाञ् धारण-पोषणयोः,** जुहो० उ०) धातु से भाव या करण में ल्युट् प्रत्यय करने पर **युवोरनाकौ** (७८५) सूत्र से यु को अन आदेश हो कर विभक्ति लाने से 'अपिधानम्' प्रयोग निष्पन्न होता है। भागुरि आचार्य के मत में 'अपि' के अकार का लोप हो कर—'पिधानम्' बनेगा। हमें सब आचार्य मान्य हैं अतः लोक में 'अपिधानम्, पिधानम्' दोनों प्रयोग चलते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रत्ययों में भी शिष्टप्रयोगानुसार जान लेना चाहिये। 'अपि' के अकारलोप के साहित्यगत कुछ उदाहरण यथा—**गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्त्तते। कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः** (मनु० २.२००)। **भुजङ्गपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति** (रघु० १.८०)। **अधित काऽपि मुखे सलिलं सखी प्यधित कापि सरोजदलैः स्तनौ** (नैषध० ४.१११)। लोपाभाव पक्ष में भी प्रयोग

---

१. यहां यह ध्यातव्य है कि 'अपि' के साहचर्य के कारण 'अव' के भी आद्य अकार का ही लोप होता है अन्त्य का नहीं।

उपलब्ध होते हैं—**अपिधाय बिलद्वारं गिरिशृङ्गेण तत्तदा** (रामायण० ४.१०.५)। **ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपिदधाति** (गीत० ५.३)।

इसी प्रकार—नह् (**णह बन्धने,** दिवा० उ०) धातु के साथ प्रायः 'अपि' के अकार का लोप देखा जाता है—**मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा** (शाकुन्तल० ७.२)। **कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्त्रोदरेण** (शाकुन्तल० १.१९)। **कवचं पिनह्य** (भट्टि० ३.४७)। **पिनह्य तानि पुष्पाणि केशेषु वरवर्णिनी** (महाभारत० १३.४२.९)। लोपाभाव में भी—**अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण। अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने** (रामायण० ३.६४.२७)।

यहां यह विशेष ध्यातव्य है कि भागुरि का यह मत हमें यहां विस्तृत रूप से नहीं लेना चाहिये। अतः यह विकल्प हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं है बल्कि कुछ शिष्टप्रयोगों तक ही सीमित है। पाणिनीयमत में भागुरिसम्मत प्रयोगों को पृषोदरादित्वेन सिद्ध किया जा सकता है।

किञ्च—'हलन्त शब्दों से स्त्रीलिङ्गबोधक आप् (टाप्) हो' यह भी भागुरि आचार्य चाहते हैं। पाणिनि के मत में हलन्त शब्दों से टाप् का विधान करने वाला कोई सूत्र नहीं अतः विकल्प सिद्ध हो जायेगा। उदाहरण यथा—

१. वाच् (वाणी) भागुरिमते—वाच्+आ (आप्)=वाचा।[1]
२. निश् (रात्रि) भागुरिमते—निश्+आ (आप्)=निशा।[2]
३. दिश् (दिशा) भागुरिमते—दिश्+आ (आप्)=दिशा।[3]
इसी प्रकार—
४. क्षुध् (भूख) भागुरिमते—क्षुध्+आ (आप्)=क्षुधा।[4]
५. गिर् (वाणी) भागुरिमते—गिर्+आ (आप्)=गिरा।[5]
६. तृष् (प्यास, लोभ) भागुरिमते—तृष्+आ (आप्)=तृषा।[6]
७. रुज् (पीडा) भागुरिमते—रुज्+आ (आप्)=रुजा।[7]
८. मुद् (प्रसन्नता) भागुरिमते—मुद्+आ (आप्)=मुदा।[8]

---

१. **ब्रह्माणी वचनं वाचा जल्पितं गदितं गिरा**—इति शब्दार्णवः। **तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणेन तिसृभिर्वाचाभिः स्वजीवितार्धं दत्तम्** (पञ्च० ४)।
२. **या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी** (गीता० २.६९)। निशाकर, निशाचर आदि शब्द इसी से बनते हैं। **दिवा-विभा-निशा०** (३,२.२१)।
३. **दिशागजस्तु तच्छ्रुत्वा प्रत्याहांशुमतो वचः** (रामायण० १.४१.९)।
४. **स्त्रीरत्नं विविधान् भोगान् वस्त्राण्याभरणानि च। न चेच्छति नरः किञ्चित् क्षुधया कलुषीकृतः** (वह्निपुराण, प्रेतोपाख्यान)।
५. **तां गिरां करुणां श्रुत्वा** (दशरथविलापनाटकम्, शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत)।
६. **लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्** (हितोप० १.१४२)।
७. **निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याऽभवद् रुजा** (महाभारत० ८.३४.१४९)।
८. **तत्पार्श्ववर्त्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती** (मार्कण्डेयपु० ११६.३०)।

९. प्रतिपद् (पड़वा तिथि) भागुरिमते—प्रतिपद्+आ (आप्) = प्रतिपदा।[1]

१०. वीरुध् (विस्तृत बेल) भागुरिमते—वीरुध्+आ (आप्) = वीरुधा।[2]

इत्थम्—दृश्—दृशा (नेत्र); शुच्—शुचा (शोक); रुष्—रुषा (क्रोध); विपद्—विपदा (विपत्ति); आपद्—आपदा; रुच्—रुचा (कान्ति); मृद्—मृदा (मिट्टी); त्वच्—त्वचा (चमड़ी); त्विष्—त्विषा (कान्ति); ऋच्—ऋचा (ऋग्मन्त्र) आदि समझने चाहियें।

परन्तु शेखरकार श्रीनागेश इस आप् वाले पक्ष को अप्रामाणिक मानते हैं। विशेष जिज्ञासु उन का मत वहीं देखें।

[लघु०] इत्यव्ययप्रकरणं समाप्तम्॥

इति सुबन्तम्॥

इति पूर्वार्धम्॥

अर्थः—यहां अव्ययप्रकरण और इस के साथ सुबन्तप्रकरण समाप्त होता है। किञ्च ग्रन्थ का पूर्वार्ध भी यहां समाप्त समझना चाहिये।

अभ्यास (४९)

(१) 'मिथो' का स्वरादिगण में पाठ उपयुक्त है या नहीं, विवेचन करें।

(२) **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्रगत 'असर्वविभक्तिः' को स्पष्ट करते हुए यह बताएं कि इस सूत्र के रहते परिगणन की क्या ज़रूरत है?

(३) उपसर्गप्रतिरूपक तथा विभक्तिप्रतिरूपकों का सोदाहरण विवेचन करें।

(४) निम्नस्थ अव्ययों को सार्थ सोदाहरण स्पष्ट करें तथा इन की अव्यय-संज्ञा करने वाला सूत्र भी अर्थसहित लिखें—
अथ, पठितुम्, परस्तात्, स्थाने, अलम्, नाना, विसृपः, यर्हि, पुरा, अस्ति, ऐषमः, अन्तरा, चिरस्, सार्धम्, कच्चित्, परुत्, जीवसे, खलु, प्रसह्य, यथाशक्ति, किल, सनुतर्।

(५) 'परिगणनं कर्तव्यम्' कह कर किन२ प्रत्ययों का परिगणन किया है?

(६) स्वर्, अन्तर्, प्रातर् यदि सकारान्त हों तो क्या अनिष्ट होगा?

(७) भागुरि के मत में निम्नस्थों का क्या रूप होगा सोदाहरण लिखें—
क्षुध्, वाच्, अपिधानम्, प्रतिपद्, मुद्, अवगाहः, निश्।

(८) मान्त कृत्प्रत्यय कौन २ से हैं? तदन्तों की अव्ययसंज्ञा कैसे होती है?

(९) अव्ययसंज्ञा की अन्वर्थता सिद्ध कर अव्यय का सार्थ लक्षण लिखें।

(१०) 'यत्र' का पाठ चादियों में क्यों किया गया है?

---

१. **देवानामथ यक्षाणां गन्धर्वाणां च सत्तम। आदौ प्रतिपदा येन त्वमुत्पन्नोऽसि पावक** (वराहपुराण, महातपोपाख्यान, अग्न्युत्पत्तिनामाध्याय)।

२. **श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम्** (अथर्व० ६.२१.२)।

(११) निम्नस्थ प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दें—

(क) **चादयोऽसत्त्वे** में 'असत्त्वे' क्यों कहा गया है ?

(ख) 'चण्' और 'च' में तथा 'नञ्' और 'न' में अन्तर बताएं।

(ग) तिरःकृत्वा और तिरःकृत्य में प्रक्रिया-भेद स्पष्ट करें।

——:ः०ः:——

शून्य-वेद-नभो-नेत्रे वैक्रमे शुभवत्सरे।
आश्विनस्य सिते पक्षे परिबृंहितरूपधृक् ॥१॥

सर्वत्र शोधितो यत्नाद् बहुत्र परिवर्धितः।
समापन्ननवाऽऽकारः पुनराद्यः प्रकाशितः ॥२॥

पूर्वमुद्रितभागेऽस्मिन् संशुद्धि-परिवर्धने।
विदुषा लेखकेनैव कृते नाऽन्येन केनचित् ॥३॥

श्रमस्यास्य महन्मूल्यं ज्ञास्यन्ति वीतमत्सराः।
रत्नस्यार्घे प्रमाणं हि ज्ञातारो न पृथग्जनाः ॥४॥

विद्वत्सु छात्रवर्गेषु गवेषणपरेषु च।
आदरं प्राप्नुयान्नूनं मत्कृतिः पूर्वतोऽधिकम् ॥५॥

द्वितीयावृत्तिः {आश्विन २०४०, वैक्रमाब्द / अक्तूबर सन् १९८३}

इति भूतपूर्वखण्ड-भारतान्तर्गत-सिन्धुतटवर्त्ति-डेराइस्माईलखाना-
ख्यनगरवास्तव्य-भाटियावंशावतंस-स्वर्गत-श्रीमद्रामचन्द्र-
वर्मसूनुना एम्० ए० साहित्यरत्नेत्याद्यनेकोपाधि-
भृता वैद्येन भीमसेनशास्त्रिणा विरचितायां
लघुसिद्धान्तकौमुद्या भैमीव्याख्याया-
मव्ययप्रकरणं पूर्त्तिमगात्।

[समाप्तञ्चात्र पूर्वाऽर्धम् ॥]

[शुभम्भूयादध्यायकानामध्यापकानाञ्च ॥]

(१) परिशिष्ट—विशेष-स्मरणीय-पद्यतालिका

[भैमीव्याख्या-प्रथमभागस्थ दर्जनों पद्यों में से व्याकरणसम्बन्धी कुछ विशेष स्मरणीय पद्य यहां प्रस्तुत किये गये हैं ।]

(१) प्रत्ययाः शिवसूत्राणि आदेशा आगमास्तथा ।
धातुपाठो गणे पाठ उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥ (पृष्ठ ८)

(२) परेणैवेण्ग्रहाः सर्वे पूर्वेणैवाऽण्ग्रहा मताः ।
ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु ॥ (पृष्ठ २९)

(३) संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥ (पृष्ठ ३५)

(४) द्वौ नञौ तु समाख्यातौ पर्युदास-प्रसज्यकौ ।
पर्युदासः सदृग्ग्राही प्रसज्यस्तु निषेधकृत् ॥ (पृष्ठ ३८)

(५) तुम्बिकातृणकाष्ठञ्च तैलं जलमुपागतम् ।
स्वभावादूर्ध्वमायाति रेफस्यैतादृशी गतिः ॥ (पृष्ठ ५४)

(६) अक्षौहिण्याः प्रमाणं तु खाऽङ्गाष्टैकद्विकैर्गजैः ।
रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नैः पञ्चघ्नैश्च पदातिभिः ॥ (पृष्ठ ६१)

(७) ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाऽभिविधौ च यः ।
एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित् ॥ (पृष्ठ ९०)

(८) अछौ अचछा अचशा अशाविति चतुष्टयम् ।
रूपाणामिह तुक्-छत्व-चलोपानां विकल्पनात् ॥ (पृष्ठ १३१)

(९) सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः ।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः ॥ (पृष्ठ १५६)

(१०) विद्वान्कीदृग्वचो ब्रूते को रोगी कश्च नास्तिकः ।
कस्याश्चन्द्रं न पश्यन्ति सूत्रं तत्पाणिनेर्वद ॥ (पृष्ठ १६०)

(११) जकारश्च शकारश्च टकारश्च ङपावपि ।
सुङस्योरुदितौ चैव सुपि सप्त स्मृता इतः ॥ (पृष्ठ १६१)

(१२) सकारो जश्शसोरोसि ङसि भ्यसि न चेन्ङसि ।
मकारश्च तथा ज्ञेय आमि भ्यामि स्थितस्त्वमि ॥ (पृष्ठ १६२)

(१३) संयोगान्तस्य लोपे हि नलोपादिर्न सिध्यति ।
रात्तु तेनैव लोपः स्याद् हलस्तस्माद्विधीयते ॥ (पृष्ठ २३०)

(१४) लक्ष्म्या वै जायते भानुः सरस्वत्यापि जायते ।
अत्र षष्ठीपदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥ (पृष्ठ २८१)

(१५) एकोना विंशतिः स्त्रीणां स्नानार्थं सरयूं गता ।
विंशतिः पुनरायाता एको व्याघ्रेण भक्षितः ॥ (पृष्ठ २८१)

(१६) अवी-तन्त्री-स्तरी-लक्ष्मी-तरी-धी-ह्री-श्रियां भियः ।
अङ्यन्तत्वात् स्त्रियामेषां न सुलोपः कदाचन ॥ (पृष्ठ ३०६)

(१७) पाणिनेर्न नदी गङ्गा यमुना च स्थली नदी ।
प्रभुः स्वातन्त्र्यमापन्नो यदिच्छति करोति तत् ॥ (पृष्ठ ३०६)

(१८) पीलुर्वृक्षः फलं पीलु पीलुने न तु पीलवे ।
वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जत्वं तत्फले पुनः ॥ (पृष्ठ ३४३)

(१९) इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्त्ति चैतदो रूपम् ।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥ (पृष्ठ ३७०)

(२०) काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नासि बाले किमिदं विचित्रम् ।
विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह ॥ (पृष्ठ ३९३)

(२१) पञ्चम्याश्च चतुर्थ्याश्च षष्ठीप्रथमयोरपि ।
यान्यद्विवचनान्यत्र शेषे-लोपो विधीयते ॥ (पृष्ठ ४२२)

(२२) जक्षि-जागृ-दरिद्रा-शास्-दीधीङ्-वेवीङ्-चकास्तथा ।
अभ्यस्तसंज्ञा विज्ञेया धातवो मुनिभाषिताः ॥ (पृष्ठ ४५५)

(२३) सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम् ।
माध्यन्दिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः ॥
(पृष्ठ ४७१)

(२४) जायन्ते नव सौ, तथामि च नव, भ्याम्भिसभ्यसां सङ्गमे,
षट् संख्यानि, नवैव सुप्यथ जसि त्रीण्येव तद्वच्छसि ।
चत्वार्यन्यवचःसु कस्य विबुधाः! शब्दस्य रूपाणि तज्
जानन्तु प्रतिभास्ति चेन्निगदितुं षाण्मासिकोऽत्रावधिः ॥ (पृष्ठ ५०४)

(२५) गवाक्शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागति-भेदतः ।
असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ॥ (पृष्ठ ५०४)

(२६) रामं सीतां लक्ष्मणं जीविकार्थे विक्रीणीते यो नरस्तं च धिग्धिक् ।
अस्मिन्पद्ये योऽपशब्दं न वेत्ति व्यर्थप्रज्ञं पण्डितं तञ्च धिग्धिक् ॥
(पृष्ठ ५३०)

(२७) अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तञ्चादिकर्मणि ।
सुदत्तमनुदत्तञ्च निदत्तमिति चेष्यते ॥ (पृष्ठ ५४६)

(२८) सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ (पृष्ठ ५८०)

(२९) वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥ (पृष्ठ ५८०)

(२) परिशिष्ट—ग्रन्थ-संकेत-तालिका

[इस व्याख्या में प्रायः ग्रन्थों का पूरा नाम दिया गया है। क्वचित् जो ग्रन्थ-संकेत दिये गये हैं उन की तालिका यहां प्रस्तुत की जा रही है।]

अथर्व० = अथर्ववेद
अमरु० = अमरुशतक
आप० ध० = आपस्तम्बधर्मसूत्र
ऋ० = ऋग्वेद
ऋतु० = ऋतुसंहार
उत्तरराम० = उत्तररामचरित
ऐ० ब्रा० = ऐतरेयब्राह्मण
कठोप० = कठोपनिषत्
कथासरित्० = कथासरित्सागर
काव्यप्र० = काव्यप्रकाश
किरात० = किरातार्जुनीय
कुमार० = कुमारसम्भव
कुवलया० = कुवलयानन्द
कौषी० ब्रा० = कौषीतकिब्राह्मण
गणरत्न० = गणरत्नमहोदधि
गीत० = गीतगोविन्द
गीता० = श्रीमद्भगवद्गीता
चर्पट० = चर्पटपञ्जरिका
चाणक्य० = चाणक्यनीतिकथा (लुडविक)
चौरपञ्चा० = चौरपञ्चाशिका
तै० उ० = तैत्तिरीयोपनिषत्
दशकु० = दशकुमारचरित
देवीक्षमा० = देवीक्षमापनस्तोत्र
द्वया० = द्वयाश्रयकाव्य
नागानन्द० = नागानन्दनाटक
नीति० = नीतिशतक (भर्तृहरि)
न्यायद० वा०भा० = न्यायदर्शनवात्स्यायन०
पञ्च० = पञ्चतन्त्र
बृ० उ० = बृहदारण्यकोपनिषत्
भट्टि० = भट्टिकाव्य
भामिनी० = भामिनीविलास
मनु० = मनुस्मृति
महावीर० = महावीरचरित
मालती० = मालतीमाधव
मालविका० = मालविकाग्निमित्र
मार्कण्डेयपु० = मार्कण्डेयपुराण
मुण्डकोप० = मुण्डकोपनिषत्
मुद्रा० = मुद्राराक्षस
मृच्छ० = मृच्छकटिक
मेघ० = मेघदूत
मैत्रा० सं० = मैत्रायणीसंहिता
मोहमुद्गर० = मोहमुद्गरस्तोत्र
यजु० = यजुर्वेद
याज्ञ० = याज्ञवल्क्यस्मृति
रघु० = रघुवंश
रामचरित० = रामचरित (युवराजकवि)
लौकिक० = भुवनेशलौकिकन्यायसाहस्री
वामनवृत्ति० = काव्यालंकारसूत्रवृत्ति
विक्रमो० = विक्रमोर्वशीय
वेणी० = वेणीसंहार
वैराग्य० = वैराग्यशतक (भर्तृहरि)
व्या० च० = व्याकरणचन्द्रोदय
व्या० सि०सु० = व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि
शत० ब्रा० = शतपथब्राह्मण
शिवराज० = शिवराजविजय
शृङ्गार० = शृङ्गारशतक (भर्तृहरि)
श्वेता० = श्वेताश्वतरोपनिषत्
समयोचित० = समयोचितपद्यमालिका
सांख्यका० = सांख्यकारिका
साहित्य० = साहित्यदर्पण
सि० कौ० = वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी
सुभाषित० = सुभाषितरत्नभाण्डागार
सुभाषितसुधा० = सुभाषितसुधानिधि
स्वप्न० = स्वप्नवासवदत्त (भास)
हितोप० = हितोपदेश

(३) परिशिष्ट—अव्यय-तालिका

[इस ग्रन्थ में व्याख्यात अव्ययों की वर्णानुक्रमणिका यहां दी गई है।]

———

● भैमीप्रकाशन के ग्रन्थों की नवीन मूल्यसूची ●

वैद्य भीमसेन शास्त्री M.A. Ph. D. की मुद्रित अनुपम कृतियां

(१) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या प्रथम भाग। यह भाग पञ्च-सन्धि-षड्लिङ्ग-अव्ययप्रकरणात्मक है। यह द्वितीय बार मुद्रित हुआ है। इस नवीनतम संस्करण में लेखक ने अनेक नये संशोधन वा परिवर्धन किये हैं। विषय को परिमार्जित तथा स्पष्ट करने के लिए सैंकड़ों नये उदाहरण तथा दो सौ से अधिक नये शोधपूर्ण फुटनोट तथा टिप्पण दिये गये हैं। अव्ययप्रकरण को पहले से लगभग दुगना कर दिया गया है। इस प्रकार प्रायः दो सौ पृष्ठों की ठोस सामग्री पूर्वापेक्षया इस संस्करण में अधिक संगृहीत है। अन्य भागों की तरह इस भाग को भी समानरूप में परिणत किया गया है। चार प्रकार के नवीन आधुनिक टाइपों के द्वारा सुन्दर शुद्धतम छपाई, अंग्रेज़ी पक्की सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड आकर्षक सम्पूर्ण कपड़े की मजबूत जिल्द। (२३ × ३६) ÷ १६ साइज के लगभग साढ़े छः सौ पृष्ठों का मूल्य केवल एक सौ रु०।

(२) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या द्वितीय भाग। इस भाग में तिङन्त-प्रकरण (दस गण तथा एकादश प्रक्रिया) की अत्यन्त विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। ७५० पृष्ठों पर आश्रित यह महाकाय भाग वैयाकरणजगत् में अपना अपूर्व स्थान बना चुका है। इस का विशेष विवरण विस्तृत सूचीपत्र में देखें। पूर्ववत् सुन्दर छपाई, ग्रेज़ी पक्की सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड कपड़े की मनोहर मज़बूत जिल्द। मूल्य केवल एक सौ रु०।

(३) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या तृतीय भाग। इस भाग में कृदन्त 'र कारक प्रकरणों का विस्तृत वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। सुप्रसिद्ध कृत्प्रत्ययों के लिये कई विशाल शब्दसूचियां अर्थ तथा ससूत्रटिप्पणों के साथ बड़े यत्न से गुम्फित की गई हैं, जिन में अढ़ाई हज़ार ये अधिक शब्दों का अपूर्व संग्रह है। प्रायः प्रत्येक प्रत्यय पर संस्कृतसाहित्य में से अनेक सुन्दर सुभाषितों या सूक्तियों का संकलन किया गया है। कारकप्रकरण लघुकौमुदी में केवल सोलह सूत्रों तक ही सीमित है जो स्पष्टतः बहुत अपर्याप्त है। भैमीव्याख्या में इन सोलह सूत्रों की विस्तृत व्याख्या करते हुए अन्त में अत्यन्त उपयोगी लगभग पचास अन्य सूत्र-वार्त्तिकों की भी सोदाहरण सरल व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार कुल मिलाकर कारकप्रकरण ५६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। अनेक प्रकार के उपयोगी परिशिष्टों सहित यह भाग लगभग चार सौ पृष्ठों में समाश्रित हुआ है। पूर्ववत् अङ्ग्रेज़ी पक्की सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड आकर्षक कपड़े की सम्पूर्ण जिल्द। मूल्य केवल पचास रु०।

(४) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या चतुर्थ भाग। इस भाग में समास, तद्धित तथा स्त्रीप्रत्यय प्रकरणों की नवीन शैली से विस्तृत व्याख्या की गई है। यह भाग शीघ्र उपलब्ध होगा।

(५) **अव्ययप्रकरणम् ।** लघुकौमुदी का अव्ययप्रकरण भैमीव्याख्यासहित पृथक् छपवाया गया है । इस में लगभग सवा पाञ्च सौ अव्ययों का सोदाहरण साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है । प्रत्येक अव्यय पर वैदिक वा लौकिक संस्कृतसाहित्य से अनेक सुन्दर सुभाषितों वा सूक्तियों का संकलन किया गया है । कठिन सूक्तियों का अर्थ भी साथ में दे दिया गया है । आजतक इतना शोधपूर्ण परिश्रम इस प्रकरण पर पहली बार देखने में आया है । साहित्यप्रेमी विद्यार्थियों तथा शोध में लगे जिज्ञासुओं के लिये यह ग्रन्थ विशेष उपादेय है । सुन्दर अंग्रेज़ी सिलाई, आकर्षक जिल्द । मूल्य केवल पच्चीस रु० ।

(६) **वैयाकरण-भूषणसार (धात्वर्थनिर्णय) भैमीभाष्य ।** इस हिन्दी भाष्य से इस ग्रन्थ की दुरूहता समाप्त हो गई है । अब परीक्षा में भूषणसार की पंक्तियों को रटने की कोई आवश्यकता नहीं रही । सरल भाषा में लिखे इस ग्रन्थ का एक बार पारायण करना ही पर्याप्त है । देश-विदेश में समानरूप से आदृत यह ग्रन्थ विद्वत्समाज में अपना गौरवपूर्ण स्थान पा चुका है । सजिल्द मूल्य केवल तीस रुपये ।

(७) **बालमनोरमा-भ्रान्ति-दिग्दर्शन ।** यह निबन्ध विद्वत्समाज की आंखों को खोलने वाला विलक्षण शोधपत्र है । एक बार पढ़ जाइये, ज्ञानवृद्धि के साथ साथ आप का मनोरञ्जन भी होगा । मूल्य केवल पांच रुपये ।

(८) **प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ? ।** इति माहेश्वराणि सूत्राणि—के अन्धविश्वासरूप तिमिर से मुक्त होने के लिये यह शोधपत्र प्रत्येक जिज्ञासु के लिये संग्रहणीय, मननीय तथा अभ्यसनीय है । अश्रुतपूर्व दरजनों प्रमाणों के आलोक में निश्चय ही वर्षों से छाया इस विषय का अज्ञान मिट जायेगा । मूल्य केवल बारह रु० ।

(९) **न्यास-पर्यालोचन ।** यह ग्रन्थ व्याकरणसंबन्धी सैंकड़ों अश्रुत विषयों का आगार है । इस प्रकार का शोधपूर्ण प्रयत्न व्याकरणविषय पर प्रथम बार प्रकाशित हुआ है । इस के विषयवार वैशिष्ट्य के लिये पुस्तकसूची देखें । स्क्रीन प्रिंटिड सुन्दर जिल्द, पक्की अङ्ग्रेज़ी सिलाई । मूल्य केवल एक सौ रु० ।

विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को विशेष कमीशन दिया जाता है ।

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें—

भैमी प्रकाशन
५३७, लाजपतराय मार्केट,
दिल्ली-११०००६

पुस्तक-सूची

[देश-विदेश के सैंकड़ों विद्वानों द्वारा प्रशंसित संस्कृत व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् श्री वैद्य भीमसेन शास्त्री एम्० ए० पी० एच० डी० द्वारा लिखित उच्चकोटि के अनमोल संग्रहणीय व्याकरणग्रन्थों की सूची]

१९८०

---

१. लघुसिद्धान्तकौमुदी—भैमीव्याख्या (चार भाग)

२. वैयाकरणभूषणसार—भैमीभाष्योपेत

३. बालमनोरमाभ्रान्तिदिग्दर्शन

४. प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?

५. न्यास-पर्यालोचन

भैमी प्रकाशन

५३७, लाजपतराय मार्केट

दिल्ली-११० ००६

"लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या"

[वैद्य भीमसेन शास्त्री एम्० ए०, पी० एच्० डी० कृत विश्लेषणात्मक भैमीनामक विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित] प्रथम भाग

लेखक के दीर्घकालिक व्याकरणाध्यापन का यह निचोड़ है। कौमुदी पर इस प्रकार की विस्तृत वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक हिन्दी व्याख्या आज तक नहीं निकली। इस व्याख्या में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्तिवचन, समास-विग्रह, अनुवृत्ति, अधिकार, सूत्रगत तथा अनुवर्तित प्रत्येक पद का अर्थ परिभाषाजन्य विशेषता, अर्थ की निष्पत्ति, उदाहरण प्रत्युदाहरण तथा विस्तृत सिद्धि देते हुए छात्रों और अध्यापकों के मध्य आने वाली प्रत्येक शंका का पूर्णतया विस्तृत समाधान प्रस्तुत किया गया है। इस हिन्दी व्याख्या की देश-विदेश के डेढ़ सौ से अधिक विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्थान-स्थान पर परिपठित विषय के आलोडन के लिये बड़े यत्न से पर्याप्त विस्तृत अभ्यास सङ्गृहीत किये गये हैं। इस व्याख्या की रूपमालाओं में अनुवादोपयोगी लगभग दो हज़ार शब्दों का अर्थ सहित बृहत्संग्रह प्रस्तुत करते हुए णत्वप्रक्रियोपयुक्त प्रत्येक शब्द को चिह्नित किया गया है। आज तक लघुकौमुदी की किसी भी व्याख्या में ऐसी विशेषता दृष्टि-गोचर नहीं होती। व्याख्या की सबसे बड़ी विशेषता अव्ययप्रकरण है। प्रत्येक अव्यय के अर्थ का विस्तृत विवेचन करके उसके लिए विशाल संस्कृत वाङ्मय से किसी न किसी सूक्ति व प्रसिद्ध वचन को सङ्गृहीत करने का प्रयास किया गया है। अकेला अव्यय-प्रकरण ही लगभग साठ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। एक विद्वान् समालोचक ने ग्रन्थ की समालोचना करते हुए यहां तक कहा था कि—"**यदि लेखक ने अपने जीवन में अन्य कोई प्रणयन न कर केवल अव्यय-प्रकरण ही लिखा होता तो केवल यह प्रकरण ही उसे अमर करने में सर्वथा समर्थ था।**" सन्धिप्रकरण में लगभग एक हजार अभूतपूर्व नये उदाहरण विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए संकलित किये गये हैं—उदाहरणार्थ अकेले '**इको यणचि**' सूत्र पर ३५ नये उदाहरण दिये गये हैं। इस व्याख्या में ग्रन्थगत किसी भी शब्द की रूपमाला को **तद्वत्** नहीं लिखा गया प्रत्युत प्रत्येक शब्द एवं धातु की पूरी-पूरी सार्थ रूपमाला दी गई है। स्थान-स्थान पर समझाने के लिये नाना प्रकार के कोष्ठकों और चक्रों से यह ग्रन्थ ओत-प्रोत है। इस प्रकार का यत्न व्याकरण के किसी भी ग्रन्थ पर अद्ययावत् नहीं किया गया। यह व्याख्या छात्रों के लिए ही नहीं अपितु अध्यापकों तथा अनुसन्धान-प्रेमियों के लिए भी अतीव उपयोगी है। अन्त में अनुसन्धानोपयोगी कई परिशिष्ट दिये गये हैं। यह ग्रन्थ भारत-सरकार द्वारा सम्मानित हो चुका है। बृहदा-कार २० × २६ ÷ ८ साइज के लगभग सात सौ पृष्ठों में इस व्याख्या का केवल पूर्वार्ध भाग समाप्त हुआ है। पूर्वार्ध भाग का लागत से भी कम मूल्य केवल तीस रुपया रखा गया है।

पाण्डीचरी स्थित अरविन्दयोगाश्रम का प्रमुख त्रैमासिक पत्र 'अदिति' इस व्याख्या के विषय में लिखता है—

"जहां तक हमें ज्ञात है यह आधुनिक शैली से विश्लेषणपूर्वक विषय का मर्म समझाने वाली अपने ढंग की पहली व्याख्या है। व्याख्याकार ने भाष्यशैली में आधुनिक-व्याख्याशैली का पुट देकर सर्वांग सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। इस में मूल ग्रन्थ के एक-एक शब्द व विचार को पूरा-पूरा खोल कर पाठकों के हृदय पर अंकित कर देने का सुन्दर यत्न किया गया है। विद्वान् व्याख्याकार ने लघुसिद्धान्त-कौमुदी की भैमी-नामक सर्वांगपूर्ण व्याख्या प्रकाशित कर के राष्ट्रभाषा की महान् सेवा की है। व्याकरण में प्रवेश के इच्छुक छात्र, व्युत्पन्न विद्यार्थी, जिज्ञासु, व्याकरणप्रेमी, अध्यापक और अन्वेषक सभी के लिये यह ग्रन्थरत्न एक-सा उपयोगी सिद्ध होगा।"

हिन्दी के प्रमुख मासिक पत्र 'सरस्वती' की सम्मति—

"लघुकौमुदी पर अब तक हिन्दी में कोई विश्लेषणात्मक व्याख्या नहीं निकली है। प्रस्तुत व्याख्या की लेखनशैली, क्लिष्ट स्थलों का विस्तृत उद्घाटन तथा सूत्रों की प्राञ्जल व्याख्या प्रत्येक संस्कृतप्रेमी पाठक पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकेगी। पुस्तक न केवल विद्यार्थियों वरन् संस्कृत का अध्ययन करने वाले सभी लोगों के लिये संग्रहणीय है।"

उत्तर भारत का प्रमुख पत्र 'नवभारत टाइम्स' लिखता है कि—

"लेखक महोदय ने कई वर्षों के कठोर परिश्रम के पश्चात् यह ग्रन्थ तैयार किया है जो उपयोगी है। ग्रन्थकर्ता स्वयं विद्याव्यसनी हैं और विद्याप्रसार ही उनके जीवन की लगन है। हमें पूरी-पूरी आशा है कि आबाल-वृद्ध संस्कृत-प्रेमी इस ग्रन्थरत्न को अपनाकर परिश्रमी लेखक के इस प्रकार अन्य भी अपूर्व ग्रन्थ प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।"

दिल्ली का प्रमुख हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' लिखता है—

"वैसे तो कौमुदी की अनेक हिन्दी टीकाएं निकल चुकी हैं; मगर इस व्याख्या की अपनी विशेषताएं हैं। इसमें व्याकरण शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन के आधुनिक तरीकों का सहारा लिया गया है। सूत्रार्थ और अभ्यास इसी के उदाहरण हैं। लघु-कौमुदी में आये प्रत्येक सूत्र की अर्थविधि को जानने के बाद विद्यार्थी को वृत्ति घोटने की आवश्यकता न रहेगी। वह सूत्रार्थ समझ कर स्वयमेव उसकी वृत्ति तैयार करने योग्य हो सकेगा। लघुकौमुदी के आये प्रत्येक शब्द के रूप देकर टीकाकार ने शब्द-रूपावली का पृथक् रखना व्यर्थ कर दिया है। इसी सिलसिले में करीब दो हजार शब्दों की अर्थसहित सूची देकर टीकाकार ने इस विशेषता को चार चाँद लगा दिये हैं। अव्यय प्रकरण इस पुस्तक की पाँचवी बड़ी विशेषता है—। यह हिन्दी टीका विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। एक बार अध्यापक से पढ़ने के बाद वे इस टीका के सहारे बड़े आराम से पुनरावृत्ति कर सकते हैं। उन्हें ट्यूटर रखने की आवश्यकता न रहेगी।

यह टीका उनके लिए ट्यूटर का काम करेगी। आशा है कि संस्कृत व्याकरण का अध्यापन करने वाली संस्थाएं इस ग्रन्थ का हृदय से स्वागत करेंगी।'

राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत, पदवाक्यप्रमाणज्ञ, **स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु,** आचार्य पाणिनि महाविद्यालय काशी की सम्मति—

"मैंने लघुसिद्धान्तकौमुदी पर श्रीभीमसेनशास्त्रिकृत भैमीव्याख्या सूक्ष्मरीत्या देखी है। काश ! कि शास्त्री जी ने ऐसी व्याख्या अष्टाध्यायी पर लिखी होती। परन्तु इतना मैं निःसन्देह कह सकता हूं कि इस प्रकार विशद स्पष्ट ओर सर्वांगीण व्याख्या लघुकौमुदी पर पहली बार देखने को मिली है। इस व्याख्या में अष्टाध्यायी पद्धति का जो पदे-पदे मण्डन किया गया है उसे देख कर मुझे अपार हर्ष होता है।"

अनुसन्धानविद्यानिष्णात **डॉ० वासुदेवशरण जी अग्रवाल** की सम्मति—

"मैंने लघुसिद्धान्तकौमुदी पर श्रीभीमसेन शास्त्री जी की विशद भैमीव्याख्या का अवलोकन किया। यह व्याख्या मुझे बहुत पसन्द आई। ऐसा स्तुत्य परिश्रम हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा ही सर्वप्रथम प्रकट हुआ है। यह व्याख्या कठिन से कठिन विषय को भी अत्यन्त सरलशैली से हृदयंगम कराने में सफल हो सकी है। प्रश्न-उत्तर, शंका-समाधान, सूत्रार्थ का स्फोरण करते समय स्थान-स्थान पर परिभाषाओं का उपयोग, अविकल रूपावलियां, सार्थ शब्दसंग्रह तथा परिश्रम से जुटाए गये अभ्यास आदि इस व्याख्या की अपनी विशेषताएं हैं। अव्ययप्रकरण का निखार प्रथम बार इस में देखने को मिला है। व्याकरण के ग्रन्थों पर इस प्रकार की व्याख्याएं निःसन्देह प्रशंसनीय हैं। यदि शास्त्री जी इस प्रकार की व्याख्या सिद्धान्त-कौमुदी पर भी लिखें तो छात्रों और अध्यापकों का बहुत उपकार होगा। मैं हृदय से इस ग्रन्थ के प्रचार एवं प्रसार की कामना करता हूं।"

"लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या"

(द्वितीय भाग—तिङन्तप्रकरण)

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी के इस भाग में दस गण और एकादश प्रक्रियाओं की विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई है। तिङन्तप्रकरण व्याकरण की पृष्ठास्थि (Backbone) समझा जाता है। क्योंकि धातुओं से ही विविध शब्दों की सृष्टि हुआ करती है। अतः इस भाग की व्याख्या में विशेष श्रम किया गया है। लगभग दो सौ ग्रन्थों के आलोडन से इस भाग की निष्पत्ति हुई है। प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्तिवचन, समासविग्रह, अनुवृत्ति, अधिकार, प्रत्येक पद का अर्थ, परिभाषाजन्य वैशिष्ट्य, अर्थनिष्पत्ति, उदाहरण-प्रत्युदाहरण और सारसंक्षेप के अतिरिक्त प्रत्येक धातु के दसों लकारों की रूपमाला सिद्धिसहित दिखाई गई है। वैयाकरणनिकाय में सैंकड़ों वर्षों से चली आ रही अनेक भ्रान्तियों का सयुक्तिक निराकरण किया गया है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में विद्यार्थियों के प्रवेश के लिए यत्र-तत्र अनेक भाषावैज्ञानिक नोट्स भी दिये हैं। चार

सौ से अधिक सार्थ उपसर्गयोग तथा उनके लिए विशाल संस्कृतसाहित्य से चुने हुए एक सहस्र से अधिक उदाहरणों का अपूर्व संग्रह प्रस्तुत किया गया है। लगभग डेढ़ हजार रूपों की ससूत्र सिद्धि और एक सौ के करीब शास्त्रार्थ और शंका-समाधान इसमें दिये गए हैं। अनुवादादि के सौकर्य के लिए छात्रोपयोगी णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, भावकर्म आदि प्रक्रियाओं के अनेक शतक और संग्रह भी अर्थसहित दिए गए हैं। जैसे नानाविध लौकिक उदाहरणों से प्रक्रियाओं को इसमें समझाया गया है वैसे अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इससे प्रक्रियाओं का रहस्य विद्यार्थियों को हस्तामलकवत् स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। अन्त में अनुसन्धानोपयोगी छः प्रकार के परिशिष्ट दिये गए हैं। ग्रंथ का मुद्रण आधुनिक बढ़िया मैप्लीथो कागज़ पर अत्यन्त शुद्ध व सुन्दर ढंग से पांच प्रकार के टाइपों में किया गया है। सुन्दर, बढ़िया, सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द तथा पक्की अंग्रेजी सिलाई ने ग्रन्थ को और अधिक चमत्कृत कर दिया है। यह ग्रन्थ भी भारत सरकार से सम्मानित हो चुका है। यह भाग २३ × ३६ ÷ १६ आकार के ७५० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। मूल्य लागत से भी कम केवल तीस रुपये।

इस भाग के विषय में **श्री पं० चारुदेव जी शास्त्री** पाणिनीय लिखते हैं—

"इतनी विस्तृत व्याख्या आज तक कभी नहीं हुई। यह अद्वितीय ग्रन्थ है। यह व्याख्या न केवल बालकों अपितु उपाध्यायों के लिए भी उपयोगी है। शब्दसिद्धि सर्वत्र स्फटिकवत् स्फुट और हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष, परिपूर्ण और असन्दिग्ध है कि इस के ग्रहण के लिए अध्यापक की अपेक्षा नहीं रहती। कौमुदीस्थ प्रत्येक धातु की अविकलरूपेण सूत्राद्युपन्यासपूर्वक सविस्तर सिद्धि दी गई है। व्याख्यांश में भी यह कृति अत्यन्त उपकारक है। स्थान-स्थान पर धात्वर्थप्रदर्शन के लिए साहित्य से उद्धरण दिये गये हैं। धातूपसर्गयोग को भी बहुत सुन्दर काव्यनाटकों से उद्धृत उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है। यह इस कृति की अपूर्वता है। इस व्याख्या के प्रणयन में शास्त्री जी ने अथाह प्रयत्न किया है। महाभाष्य, न्यास, पदमञ्जरी आदि का वर्षों तक अवगाहन करके उन्होंने यह व्याख्या लिखी है—।"

इस भाग के विषय में दिल्ली का **नवभारत टाइम्स** लिखता है—

"संस्कृत व्याकरण के अध्ययन में कौमुदी ग्रन्थों का अपना स्थान है। प्रायः लघुकौमुदी से ही व्याकरण का आरम्भ किया जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ का समझना आसान नहीं है। छात्रों के लिए यह ग्रन्थ वज्र के समान कठोर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीभीमसेनशास्त्री ने इस की हिन्दी व्याख्या की है। व्याख्याकार राजधानी के सुप्रसिद्ध वैयाकरण हैं। इस व्याख्या को देखकर हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसी व्याख्या लघु तो क्या, सिद्धान्तकौमुदी की भी नहीं प्रकाशित हुई। इस व्याख्या का प्रथम भाग आज से बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। तब इसका भारी स्वागत हुआ था। जनता को उस के उत्तरार्द्ध भाग की व्याख्या की तभी से उत्कट लालसा रही है। लेखक ने अब इसे प्रकाशित कर जहां छात्रों का उपकार किया है, वहां शिक्षकों, प्राध्यापकों को भी उपकृत किया है। इस में लेखक का गहन अध्ययन, कठोर परिश्रम

तथा विद्वत्ता स्थान-स्थान पर प्रकट होते ही हैं। छात्रोपयोगी किसी भी विषय का विवेचन छोड़ा नहीं गया। यह इस की बड़ी भारी विशेषता है। इस भाग में लिङन्त-प्रकरण (दशगण तथा एकादश प्रक्रियाओं) का अत्यन्त विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह प्रकरण धातुसम्बन्धी होने से व्याकरण का प्राण है। इस में प्रत्येक धातु के दस लकारों की ससूत्र प्रक्रिया साध कर उनकी सारी रूपमाला भी दी गई है। इससे विद्यार्थियों को धातुरूपावलियों की आवश्यकता नहीं रहती। छः सौ के करीब टिप्पणियां तथा साढ़े चार सौ से अधिक उपसर्गयोग इस ग्रन्थ की अपनी अपूर्व विशेषता है। इन के लिए व्याख्याकार ने महान् श्रम कर विपुल संस्कृत-साहित्य से जो डेढ़ हजार के करीब अत्यन्त सुन्दर संस्कृत की सूक्तियों का चयन किया है। वह स्तुत्य है। सैंकड़ों उपयोगी शंका समाधान तथा णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त भावकर्म आदि अर्थ सहित कई शतक विद्यार्थियों के लिए निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होंगे। इस ग्रन्थ की उत्कृष्टता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अकेली भूधातु पर ही विद्वान् व्याख्याकार ने ९० पृष्ठों में अपनी व्याख्या पूर्ण की है।

संक्षेप में इस व्याख्या को लघुकौमुदी का महाभाष्य कह सकते हैं। यह ग्रंथ न केवल छात्रों, परीक्षार्थियों तथा उपाध्यायों, अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा बल्कि अनुसंधान में रुचि रखने वालों के लिए भी परमोपयोगी एवं सहायक सिद्ध होगा। इसे पढ़ने से जहां व्याकरण जैसे शुष्क विषय में सरसता पैदा होती है वहां अनुसंधान कार्य को भी बढ़ावा मिलता है। हिन्दी में ऐसे ग्रंथ स्वागत योग्य हैं।" (२९.८.७१)

"लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या"

(तृतीय एवं चतुर्थ भाग—प्रेस में)

भैमीव्याख्या के अन्तिम तृतीय तथा चतुर्थ भाग शीघ्र छपने जा रहे हैं। तृतीय भाग में कृदन्त और कारक एवं चतुर्थ भाग में समास तद्धित और स्त्रीप्रत्यय का विस्तृत वैज्ञानिक तुलनात्मक विवेचन किया गया है। कृदन्तप्रकरण में तव्यत्-अनीयर् प्रत्ययान्तों, क्त्वाप्रत्ययान्तों, ल्यबन्तों और तुमुन्नन्तों की सार्थ विस्तृत तालिका देखते ही बनती है। क्त और क्तवतु प्रत्ययान्तों की तालिका भी बड़े यत्न से संगृहीत की गई है। यह भाग काव्यादि के सुन्दर उदाहरणों से यत्र तत्र ओत-प्रोत है। स्थान-स्थान पर अनुसंधानोपयोगी विशेष टिप्पण और शंका-समाधान दिये गये हैं। कारक-प्रकरण को पर्याप्त लम्बा और स्पष्ट किया गया है। इस के स्पष्टीकरणार्थ मूलातिरिक्त अन्य अनेक सूत्र भी सार्थ सोदाहरण दिये गये हैं। इस प्रकरण का बालोपयोगी शुद्धाशुद्धविवेचन विशेष उपयोगी है। समास और तद्धितप्रकरण का इतना विस्तृत व्याख्यान पहली बार इस व्याख्या में उपलब्ध हुआ है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त में अभ्यास दिये गये हैं। स्त्रीप्रत्ययों पर छात्रोपयोगी विस्तृत तालिका इस व्याख्या की अपनी विशेषता है। ग्रन्थ के अन्त में अनुसन्धानोपयोगी नाना प्रकार के परिशिष्ट बड़े काम की वस्तु हैं।

"वैयाकरण-भूषण-सार—भैमीभाष्योपेत"
(धात्वर्थनिर्णयान्त)

वैयाकरण-भूषणसार वैयाकरणनिकाय में लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थ है। व्याकरण के दार्शनिक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये इस का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतएव एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री आदि व्याकरण की उच्च परीक्षाओं में यह पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत किया गया है। परन्तु इस ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा में कोई भी सरल व्याख्या आज तक नहीं निकली—हिन्दी तो क्या अन्य भी किसी प्रांतीय व विदेशी भाषा में इसका अनुवाद तक उपलब्ध नहीं। विश्वविद्यालयों के छात्र तथा उच्च कक्षाओं में व्याकरण विषय को लेने वाले विद्यार्थी प्राय: सब इस ग्रन्थ से त्रस्त थे। परन्तु अब इस के विस्तृत आलोचनात्मक सरल हिन्दीभाष्य के प्रकाशित हो जाने से उनका भय जाता रहा। छात्रों व अध्यापकों के लिये यह ग्रन्थ समानरूपेण उपयोगी है। इस ग्रन्थ के गूढ़ आशयों को जगह-जगह वक्तव्यों व फुटनोटों में भाष्यकार ने भली भांति व्यक्त किया है। भैमीभाष्यकार व्याकरणक्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं, तथा वर्षों से व्याकरण के पठनपाठन का अनुभव रखते हैं। अत: छात्रों व अध्यापकों के मध्य आने वाली प्रत्येक छोटी-से-छोटी समस्या को भी उन्होंने खोलकर रखने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जगह-जगह वैयाकरणों और मीमांसकों के सिद्धान्त को खोलकर तुलनात्मक-रीत्या प्रतिपादित किया गया है। इस भाष्य की महत्ता इसी से व्यक्त है कि अकेली दूसरी कारिका पर ही विद्वान् भाष्यकार ने लगभग साठ पृष्ठों में अपना भाष्य समाप्त किया है। विषय को समझाने के लिये अनेक चार्ट दिये गये हैं जैसे—वैयाकरणों और नैयायिकों का बोधविषयक चार्ट, धातु की साध्यावस्था और सिद्धावस्था का चार्ट, प्रसज्य और पर्युदास प्रतिषेध का चार्ट आदि। पूर्वपीठिका में भाष्यकार ने व्याकरण के दर्शन-शास्त्र का विस्तृत क्रमबद्ध इतिहास देकर मानो सुवर्ण में सुगन्ध का काम किया है। ग्रन्थ के अन्त में अनुसन्धानप्रेमी छात्रों के लिये सात परिशिष्ट तथा आदि में विस्तृत विषयानुक्रमणिका दी गई है जो अनुसन्धान-क्षेत्र में अत्यन्त काम की वस्तु हैं। वस्तुत: व्याकरण में एक अभाव की पूर्ति भाष्यकार ने की है। इस भाष्य की प्रशंसा में देश-विदेश के विद्वानों के प्रशंसा-पत्र धड़ाधड़ आ रहे हैं। **भारत सरकार द्वारा यह ग्रन्थ सम्मानित हो चुका है।** ग्रन्थ का मुद्रण बढ़िया मैप्लीथो कागज़ पर अत्यन्त शुद्ध व सुन्दर ढंग से छ: प्रकार के टाइपों में किया गया है। सुन्दर बढ़िया सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द तथा पक्की अंग्रेज़ी सिलाई ने ग्रन्थ को और अधिक चमत्कृत कर दिया है। मूल्य २५ रुपये।

"नवभारत टाइम्स" इस ग्रन्थ की आलोचना करता हुआ लिखता है—

"ग्रन्थ के भावों और गूढ़ आशयों को व्यक्त करने वाले पदे-पदे वक्तव्यों और पादटिप्पणों से लेखक का गम्भीर अध्ययन व श्रम स्पष्ट झलकता है। पञ्चमी और त्रयोदशी कारिकाओं पर अकर्मक और सकर्मक धातुओं के लक्षण का आशय जैसा इस भाष्य में स्पष्ट किया गया है अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इस तरह के अन्य भी

शतशः स्थल उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शास्त्रीजी की शैली अध्येताओं व पाठकों के मन में उत्पन्न होने वाली सम्भावित शंकाओं को बटोर-बटोर कर ध्वस्त करने की क्षमता रखती है। द्वितीय कारिका की व्याख्या का लगभग सत्तर पृष्ठों में समाप्त होना ज्वलन्त प्रमाण है। हिन्दी में इस प्रकार के यत्न स्तुत्य हैं।"

(९ मार्च, १९६९)

बम्बई विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग के अध्यक्ष **डाक्टर त्र्यम्बक गोविन्द माईणकर** लिखते हैं—

"Students of Grammar will always remain indebted to Bhim Sen Shastriji for his very valuable help available in his commentary. I wish Bhim Sen Shastriji writes similar commentaries on other works in the field of Grammar and renders service both to the subject of his love and to the world of students and scholars I once again congratulate him."

अर्थात् श्रीभीमसेन शास्त्री के इस बहुमूल्य व्याख्यान को पाकर व्याकरण के विद्यार्थी उन के सदा ऋणी रहेंगे। मैं चाहता हूं कि शास्त्री जी इस प्रकार की व्याख्यायें व्याकरण के अन्य ग्रन्थों पर भी प्रकाशित करते हुए विद्यार्थियों तथा अनुसन्धानप्रेमियों का उपकार करेंगे। मैं शास्त्री जी को उनके इस कार्य के लिए पुनः बधाई देता हूं।

डा० सत्यव्रत जी शास्त्री व्याकरणाचार्य, प्रोफेसर एवं संस्कृतविभागाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय लिखते हैं—

"वैयाकरणभूषणसार ग्रन्थ के क्लिष्ट शब्दावली में लिखा होने के कारण विद्यार्थियों को इसे समझने में बहुत कठिनाई हो रही थी। इसी कठिनाई को दूर करने की सदिच्छा से प्रेरित हो सुप्रसिद्ध वैयाकरण पं० भीमसेन शास्त्री ने हिन्दी में इसकी सरल और सुबोध व्याख्या लिखी है। शास्त्री जी का व्याकरणशास्त्र का अध्ययन अति गहन है। विषय स्पष्टातिस्पष्ट हो, इस विषय में सतत उद्योगशील रहे हैं। इसका यह परिणाम है कि उन की व्याख्या में गहराई भी है और विशदता भी। यह व्याख्या विद्वानों के लिए एवं विद्यार्थियों के लिए एक समान उपयोगी है।"

स्व० श्री पण्डित **कुबेरदत्तजी शास्त्री व्याकरणाचार्य** प्रिंसिपल श्री राधाकृष्ण संस्कृतमहाविद्यालय, खुर्जा लिखते हैं—

"वैयाकरणभूषणसार पर विशद भैमीभाष्य को पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसा परिश्रम हिन्दी में प्रथम बार हुआ है। यह भाष्य न केवल विद्यार्थियों व परीक्षार्थियों के लिए अपितु अध्यापकों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। व्याख्यान की शैली नितान्त हृदयहारिणी तथा स्तुत्य है। व्याकरण के अन्य दार्शनिक ग्रंथों की भी इसी शैली में उन्हें व्याख्या करनी चाहिये। मैं शास्त्री जी को उनकी सरल कृति पर बधाई देता हूं।"

डा० रामचन्द्र जी द्विवेदी प्रोफेसर एवं संस्कृतविभागाध्यक्ष, जयपुर यूनिवर्सिटी अपने एक पत्र में लिखते हैं—

"I gratefully acknowledge receipt of a copy of the Vaiyakarana-Bhusana-Sara. Your knowledge of the grammar is profound and subtle and the world of scholars expect many such good works from your pen."

अर्थात् "आप का व्याकरणविषयक ज्ञान गम्भीर एवं व्यापक है। विद्वत्समाज आप की लेखनी से इस प्रकार की अनेक सुन्दर कृतियों की आशा करता है।"

गुरुकुल झज्झर के आचार्य तपोमूर्ति **श्रीभगवान्देवजी आर्य** लिखते हैं—

"आप का परिश्रम स्तुत्य है। छात्रों के लिए इस ग्रन्थ का आर्यभाषानुवाद कर के आपने महान् उपकार किया है। आप को अनेकशः बधाइयां।"

बालमनोरमा-भ्रान्ति-दिग्दर्शन

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री M. A. Ph. D. साहित्यरत्न]

श्री भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी पर श्री वासुदेव दीक्षित की बनाई हुई बालमनोरमा टीका सुप्रसिद्ध छात्रोपयोगी ग्रन्थ है। पिछली अर्धशताब्दी में इसके कई संस्करण मद्रास, लाहौर, बनारस और दिल्ली आदि महानगरों में अनेक दिग्गज विद्वानों के तत्त्वाधान में प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि इन स्वनामधन्य विद्वान् सम्पादकों ने इस ग्रन्थ के साथ ज़रा भी न्याय नहीं किया, इसे पढ़ने तक का भी कष्ट नहीं किया। यही कारण है कि इस में अनेक हास्यास्पद और घिनौनी अशुद्धियां दृष्टिगोचर होती हैं। इस से पठन-पाठन में बहुत विघ्न उपस्थित होता है। इस शोधपूर्ण लघु निबन्ध में बालमनोरमाकार की कुछ सुप्रसिद्ध भ्रान्तियों की सयुक्तिक समीक्षा प्रस्तुत की गई है। आप इस शोधपत्र को पढ़ कर मनोरंजन के साथ-साथ प्रक्रियामार्ग में अन्धानुकरण न करने तथा सदैव सजग रहने की भी प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। इसमें स्थान-स्थान पर विद्वानों की प्रमादपूर्ण सम्पादन कला पर भी अनेक चुभती चुटकियां ली गई हैं। यह निबन्ध प्रकाशकों, सम्पादकों, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों सब की आंखों को खोलने वाला एक समान उपयोगी है। हिन्दी में इस प्रकार का साहसपूर्वक प्रयत्न पहली बार किया गया है। अनेक प्रकार के टाइपों में मैप्लीथो कागज पर छपे सुन्दर शोधपत्र का मूल्य—पांच रुपये केवल।

प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री M.A. Ph. D. साहित्यरत्न]

इस शोधपूर्ण लघु निबन्ध में प्रत्याहार सूत्रों (अइउण् आदि) के निर्माता के विषय में खूब ऊहापोहपूर्वक पूर्ण विचार किया गया है। दर्जनों नये प्रमाणों का युक्तियुक्त विवेचन पहली बार इस विषय पर प्रस्तुत किया गया हैं। एक बार इसे पढ़ जाइये आप अन्धविश्वास के घेरे से अपने आपको अवश्य मुक्त पाएंगे। अनेक प्रकार के टाइपों में मैप्लीथो कागज पर छपे सुन्दर शोधपत्र का मूल्य—पांच रुपये केवल।

न्यास—पर्यालोचन

[A CRITICAL STUDY OF JINENDRA BUDDHI'S NYASA]

यह ग्रन्थ काशिका की प्राचीन सर्वप्रथम व्याख्या काशिकाविवरणपञ्चिका अपरनाम न्यास पर लिखा गया बृहत्काय शोधप्रबन्ध है जिसे **दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा** पी० एच्० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत किया गया है। यह शोधप्रबन्ध वैद्य भीमसेन शास्त्री द्वारा कई वर्षों के निरन्तर अध्ययन स्वरूप बड़े परिश्रम से लिखा गया है। इसमें कई प्रचलित धारणाओं का खुल कर विरोध किया गया है। जैसे न्यासकार को अब तक बौद्ध समझा जाता है परन्तु इसमें उसे पूर्णतया वैदिकधर्मी सिद्ध किया गया है। यह शोधप्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में न्यास और न्यासकार का सामान्य परिचय देते हुए न्यासकार का काल, निवास-स्थान, न्यास का वैशिष्ट्य, न्यास की प्रसन्नपदा प्रवाहपूर्णा शैली तथा न्यास और पदमञ्जरी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय में 'न्यास के ऋणी उत्तर-वर्त्ती वैयाकरण' नामक अत्यन्त शोधपूर्ण नवीन विषय प्रस्तुत किया गया है। इस में केवल पाणिनीय वैयाकरणों को ही नहीं लिया गया अपितु पाणिनीतर चान्द्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण, हैमशब्दानुशासन, मलयगिरिशब्दा-नुशासन, संक्षिप्तसार, मुग्धबोध तथा सारस्वत इन दस प्रमुख व्याकरणों को भी सम्मिलित किया गया है। तृतीयाध्याय में 'उत्तरवर्त्ती वैयाकरणों द्वारा न्यास का खण्डन' नामक अपूर्व विषय प्रतिपादित है। इस में उत्तरवर्त्ती वैयाकरणों द्वारा की गई न्यासकार की आलोचनाओं पर कारणनिर्देशपूर्वक युक्तायुक्तरीत्या खुल कर विचार उपस्थित किये गये हैं। चतुर्थ अध्याय में 'न्यास की सहायता से काशिका का पाठसंशोधन' नामक महत्त्वपूर्ण विषय का वर्णन है। इसमें काशिका ग्रन्थ की अद्यत्वे मान्य सम्पादकों (?) द्वारा हो रही दुर्दशा का विशद प्रतिपादन करते हुए उसके अनेक अशुद्ध पाठों का न्यास के आलोक में सहेतुक शुद्धीकरण प्रस्तुत किया गया है। पञ्चम अध्याय में न्यासकार की भ्रान्तियों तथा न्यास के एक सौ भ्रष्ट-पाठों का विस्तृत लेखा-जोखा उपस्थित किया गया है। छठा अध्याय अनेक नवीन बातों से उपबृंहित उपसंहारात्मक है। व्याकरण का यह ग्रन्थ पाणिनीय व पाणिनीतर व्याकरण के क्षेत्र में अपने ढंग का सर्वप्रथम किया गया अनूठा ज्ञानवर्धक प्रयास है। यह ग्रन्थ प्रत्येक पुस्तकालय के लिए संग्राह्य है तथा व्याकरणशास्त्र में शोधकार्य करने वाले शोधच्छात्रों के लिए नितान्त उपयोगी है। सुन्दर मैप्लीथो कागज़, पक्की अंग्रेज़ी सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड, आकर्षक मजबूत जिल्द से सुशोभित ग्रन्थ का मूल्य—केवल एक सौ रुपये।

प्राप्तिस्थान—

भैमी प्रकाशन

५३७ लाजपतराय मार्केट, (दीवान हाल के सामने)

दिल्ली—११०००६

BHAIMI PRAKASHAN

(1) LAGHU SIDDHANT KAUMUDI—BHAIMI VYAKHYA PART-I

Bhaimi Vyakhya of Shri Bhim Sen Shastri is unique and first of its kind published in Hindi, in its detailed and scientific exposition of the Laghu Siddhant Kaumudi. The fact that part-I (पूर्वार्ध) runs into more than 600 pages (large size), speaks for the painstaking nature, depth of learning and experience of the author. He has left no stone unturned to make the subject as simple and easy to grasp as possible for the students and to achieve this aim, he has combined traditional method with the modern and scientific method of teaching and analysis.

The author has taken great pains to bring home to students the meaning of the Sutras without the help of Vrittis. At the end of each section have been appended excercises, prepared with great care and caution to remove the doubts of studens. Declensions of all the words mentioned in the L. S. K. have been given in the Bhaimi Vyakhya. This does away with the need to have a separate Roopmala. The author has also given a list of about 2000 words with meanings. These include many rare and uncommon words. This is a real help in translation. The unique feature of the publication is the section on Avyaya (अव्यय), which has been acclaimed by eminent scholars and erudite pandits as an original contribution to the subject. The several indexes at the end are very useful.

The language of the work is very simple and lucid. The difficult and knotty points have been handled deftly. On controversial subjects, the views of all the well-known authorities have been quoted. The author is not a blind follower of tradition in matter of interpretation and meaning of Sutras. Wherever he

differs, he gives convincing arguments in support of his own view, which gives a stamp of his deep study, research and vast teaching experience. Bhaimi Vyakhya in short is a self-tutor and is of immense help to teachers and research scholars. For a book of about 650 pages of large size, the price of Rs. 30/- is extremely low.

(2) LAGHU SIDDHANT KAUMUDI—BHAIMI VYAKHYA PART-II

Part-II of Bhaimi Vyakhya on Laghu Siddhant Kaumudi deals with the तिङन्त section which is known as the backbone of Sanskrit grammar. The work is an original commentary in the traditional style, which combines the modern scientific technique of exposition and comparative analysis. The work is unique in the प्रक्रिया portion. The author has given detailed प्रक्रिया of about 1500 verbal forms besides conjugations of more than 300 verbs in all the ten tenses and moods. The use and meaning of different उपसर्गs in combination with verbs has been illustrated in about 1000 quotations taken from the famous Sanskrit works. For the benefit of students, exercises have been given at the end of each sub-section. The causal, desiderative, intensive and denominative verbal forms have been ably explained. One hundred illustrations of each of these forms have been given with meaning. The inclusion of well-known controversies, with the view point of each side and author's own, is a special feature of the work. In many places, the author has offered new solutions to difficult problems left un-attended even by Varadaraja himself. At the end of the publication have been appended six indexes, of which special mention may be made of no. 5.

This voluminous work running into 750 pages has been priced Rs. 30/- only which is very low, keeping in view its technical excellence and the labour involved in bringing out in such a publication.

(3) LAGHU SIDDHANT KAUMUDI—BHAIMI VYAKHYA PART-III-IV

The last two parts of the Bhaimi Vyakhya on **L.S.K.** are being readied for the press. Like the first two parts these parts too

deal in great details with कृदन्त, कारक, समास, तद्धित and स्त्रीप्रत्यय and contain excellent material for research scholars. The section on Karakas has been elaborated by inclusion of a sufficient number of new Sutras not found in the original L.S.K. of Varadaraja. The exposition of Samas and Taddhit has also been done at such a great length for the first time. As in the fiirst two parts, exercises have been added at the end of each sub-section.

(4) VAIYAKARAN BHUSHAN SARA

Vaiyakaran Bhushan Sara of Kaundbhatt is an important treatise of Sanskrit grammar and occupies a special position for its exposition of the principles of philosophy of grammar. This has been prescribed as a text-book for M.A., Acharya, Shastri etc. degrees. The work is quite a difficult one and at places incomprehensible for even the brilliant students. This is evident from the fact that till recently no translation of V.B.S. in English, Hindi or any other language of country (except in Sanskrit) was available. The Bhaimi Bhashya of Shri Bhim Sen Shastri has filled this long felt need. Bhim Sen Shastri is an eminent Sanskrit scholar and grammar is dear to his heart. He has been teaching Sanskrit grammar for more than 3 decades and through his researches has carved out a place for himself in the field. This is borne out by the commentary on the धात्वर्थ-निर्णय of V.B.S. This commentary has won him laurels from whithin and outside the country and has been given recognition by the Government of India too. The explanations of the knotty points in simple and flowing language are remarkable. His style of raising the doubt and putting forth its solution is commendable. Particularly praiseworthy are elucidations of Karikas 2, 5 and 13. At the end of the book, the author has given indexes which are very useful for teachers, students and reasearch scholars. Dr Satya Vrat Shastri, Professor and Head of Sanskrit Department, Delhi University has contributed a scholarly introduction.

The book has been printed very nicely on maplitho paper and is clothbound. This makes it very useful, particularly for libraries. It is priced only Rs. 25/- which is considered on the low side keeping in view the prices of research work of comparative merit.

(5) A STUDY OF NYASA

Recently the famous research work of Shastriji under the caption 'Nyasa Paryalochana' (in Hindi) has been published. This is an original contribution towards the study of 'Kasika-Vivarana-Panjika' also known as 'Nyasa' the earliest known commentary on 'Kasika' and it has been accepted for the award of Ph.D. degree by the University of Delhi. Infact, it is the result of Shastriji's many years' continuous study and loving labour. Several current notions have been boldly contradicted. For example, Nyasakara is still believed to be a Buddhist, but in this thesis several evidences have been put forward to show that he was a follower cf Vedic religion.

The thesis is divided into six chapters. The first chapter, while giving general introduction to the Nyasa and its author, deals with the latter's time and place, the salient features of Nyasa, its elegant and fluent style and a comparatiive study of Nyasa and Hardatta's Padamanjari.

The second chapter deals with entirely a new research subject 'Later Grammarians' indebtedness to Nyasa'. This discusses not only Paninian grammars but also includes the ten main non-Paninian grammars, viz. Chandra, Jainendra, Katantra, Sakatayana, Saraswatikanthabharan, Hemchandra's Sabdanusasana, Malayagirisabdanusasana, Sankshiptasara, Mugdhabodha & Sarasvata.

The third chapter entitled 'Refutation of Nyasa by Later Grammarians' discusses another topic not touched upon earlier by anyone. Here the author examines the later grammarians' criticisms of Nyasakara by presenting in elaborated details the reasons for their soundness or otherwise.

The forth chapter deals with an important issue 'Correction of Kasika-texts in the context of Nyasa'. The author has pointed out at length the grave mistakes committed by the modern eminent scholars in editing Kasika and has offered rectification of several of its incorrect texts with justifications in the context of Nyasa.

The fifth chapter gives a detailed account of the misconceptions of Nyasakara and an hundred incorrect readings.

The sixth chapter gives the conclusion adding several new facts.

In the field of Paninian and non-Paninian grammars this work is most reliable and uniquely informative first attempt of its own kind. Needless to say, this publication is a must for every library and is exceedingly useful for research scholars in the field of Sanskrit grammar.

The book is printed on fine maplitho paper and is clothbound costing Rs. 100/- only. (PP. 20+432)

(6) BALMANORMA BHRANTI-DIGDARSHAN

This research paper in Hindi by Shri Bhim Sen Shastri points out the glaring mistakes and contradictions, which are eyesores to both students and teachers, in the various editions of Balmanorama edited by eminent scholars from different centres in the country. The author through convincing arguments has established that these learned scholars have not only not taken any pains to edit the work carefully but have blindly followed each other, not noticing even the self-evident errors. The paper is priced Rs. 5/-

(7) PRATYAHAR SUTRORN KA NIRMATA KAUN ?
(Who is the author of Pratyahar aphorisms ?)

It is for the first time the problem of the authoship of the Pratyahar Sutras has been analysed in such depth. The learned author has furnished many convincing arguments and produced numerous documentary evidence in support of his theory. The essay is an eye-opener to those who are easily let astray by blind faith. The paper is priced Rs. 5/-

These books can be had of—

BHAIMI PRAKASHAN
537, Lajpat Rai Market, (Opp. : Diwan Hall)
DELHI-110006